Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

COMPLIMENTARY

Ananda Varta

श्री श्री आनन्दमयी चैरिटेबल सोसाइटी

ॐ माँ

मातृ शरणं

हिन्दी

वर्ष २८ अप्रैल, १९८१ संख्या २

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

New Publications

FROM THE LIFE OF SRI ANANDAMAYI MA

Volume I

By

Dr. Bithika Mukerji

Department of Philosophy, B. H. U.

Second revised edition

The thrilling story of Sri Ma's life from Her birth in 1896 in East Bengal until 1932 when She left Dacca for good and became universal

6×9", 215 pp. Rs. 20/- or £ 1/6 or $ 3.00

2nd volume in Press

★ ★ ★

ANANDAMAYI MA'S INSCRUTABLE KHEYĀL

By

Anil Ganguli

A delightful little collection of interesting episodes from Sri Ma's fascinating līlā

4×5", 65 pp. Rs. 5/- or sh. 12/- or $ 1.50

SHREE SHREE ANANDAMAYEE CHARITABLE SOCIETY

31, Ezra Mansions, 10, Govt. Place East, Calcutta-700 069

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

For Library

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आनन्द वार्ता

वर्ष २८] अप्रैल १९८१ [संख्या २

परामर्श परिषद

आचार्य पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
पण्डित करुणापति त्रिपाठी
डॉ० ज्ञानवती त्रिवेदी पी-एच० डी०
डॉ० हरवंश लाल शर्मा पी-एच० डी०, डी० लिट्०
ब्रह्मचारी भास्करानन्द
ब्रह्मचारी निर्मलानन्द एम० ए०, शास्त्री

■

सम्पादक

डॉ० मुनीश्वर झा डी० लिट्० (पेरिस), एम० ए०, बी० एल०, साहित्याचार्य

■

वार्षिक चन्दा की दरें

■

भारत में—	१२ रुपये	(डाक व्यय सहित)
विदेशों में—		
अमेरिका—	४ डालर (सी० मेल)	,,
,,	८ डालर (हवाई डाक) ५०.०० रुपये	,,
अन्य देशों में—	२ पौण्ड (सी० मेल)	,,
	३.५० पौण्ड (हवाई डाक) ४०.०० रुपये	,,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ग्राहकों के लिए सूचनाएँ

- 'आनन्द वार्ता' त्रैमासिक पत्रिका है जो हिन्दी, बंगला और अंग्रेजी में अलग-अलग प्रकाशित होती है।
- प्रत्येक संस्करण का वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होता है। वार्षिक चन्दा अग्रिम १५ दिसम्बर तक प्राप्त होने पर नये वर्ष की सूची में ग्राहकों के नाम दर्ज कर लिये जाते हैं।
- कृपया वार्षिक चन्दा निम्न पते पर भेजने का कष्ट करें—श्री मैनेजर, दी पब्लिकेशन डिविजन, श्री श्री आनन्दमयी चैरिटेबल सोसायटी, ३१ एजरा मेन्सन, १० गवर्नमेण्ट प्लेस (ईस्ट), कलकत्ता–७०००६९।
- डाक विभाग की गड़बड़ी से अगर कोई अंक निर्धारित समय पर न प्राप्त हो तो कृपया कार्यालय को सूचित करें।
- यदि आप अपने पते में किसी प्रकार का परिवर्तन करना चाहते हैं तो अविलम्ब सूचना दें।
- वार्षिक चन्दा निर्धारित समय पर प्राप्त होने पर कार्यालय को सुभीता होती हैं। अगर आप किसी कारण अगले वर्ष ग्राहक नहीं रहना चाहते तो इसकी सूचना अवश्य दें।
- पत्रिका वी० पी० नहीं भेजी जाती।

श्री श्री आनन्दमयी चैरिटेबल सोसायटी, कलकत्ता की ओर से डॉ० प्रफुल्लचन्द्र दत्त, पी-एच० डी० द्वारा, ३१ एजरा मेन्सन, १० गवर्नमेण्ट प्लेस, कलकत्ता-६९ से प्रकाशित तथा श्री महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी–१ में मुद्रित।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विषय सूची

१. मातृवाणी ८९
२. अमावस्या की रात्रि में मातृ-सत्संग—कुमारी गीता बनर्जी ९१
३. प्रातःस्मरणीया श्री श्री माता आनन्दमयी के शुभागमन पर—
श्री कान्तानन्द ९५
४. माँ के साथ दुबराजपुर में—श्री शिवानन्द ९८
५. केवल वह और यहीं—श्री जयनाथ कौल 'सेवक' १०१
६. नीतिशास्त्र का स्वरूप—श्री हरिश्चन्द्र (हरीश बाबू) १०२
७. मानस के वक्ता और श्रोता—डा० सरोज पालीवाल १०७
८. बौद्ध दर्शन में प्रमाण विचार : समीक्षात्मक दृष्टिकोण—
श्री हरिओम् सिंह ११२
९. सत्य—प्रोफेसर शैलेन्द्रकुमार त्रिपाठी ११६
१०. अमर शहीद सन्त सरमद—श्री जयनाथ कौल १२४
११. मन तू निराश न हो— १२९
१२. स्थितप्रज्ञ प्रकरण—श्री रामकुमार भुवालका १३२
१३. बीर बरह्म—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल १४४
१४. मराठी लोक गीतों में गौरी पूजन—श्रीराम सिंह यादव १५७
१५. सन्त रामकृष्ण परमहंस और योगेश्वरी भैरवी ब्राह्मणी—
श्री बल्लभदास बिन्नानी १६३

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तुम तो देती सदा सहारा

— श्री सीताराम सोनी —

तुम तो देती सदा सहारा
यह तो मेरी ही थी गलती जो मैंने तुमको न पुकारा।
तुमने दोष न गिने हमारे
सारे बिगड़े काज सँवारे
मैला उजला जैसा आया ले गोदी में उसे दुलारा।
'श्री हरि की ही कथा कथा है
अन्य सभी कुछ वृथा व्यथा है'
हमें सत्य पथ पर लाने को बार-बार यह वचन उचारा।
बड़ भागी जो तुममें अटका
उसको रहा न कोई खटका
लाख दिखावे कोई लटका उसको तुमने सदा उबारा।
तीर्थ हुए हैं पावन तुमसे
औ' मन्दिर मन-भावन तुमसे
जहाँ जहाँ भी किया वास बस वहीं बन गया राम-दुआरा।
करो कृपा दो चरण-कमल-रति
अब तो तुम ही मेरी गति मति
सदा रहे आँखों के आगे भुवन-मङ्गला रूप तुम्हारा।

■

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मातृ वाणी

मनुष्य के लिए जो श्रेष्ठ-मार्ग है, वही ग्रहणीय। चेष्टा कर रहे हो, आनन्द की बात है। श्रेष्ठ यह है—वीर-धीर होकर सती के सतीत्व की रक्षा करना, पर पुरुष की दृष्टि न पड़े, यही प्रयत्न करना। जिस क्रिया से भगवत्-भाव उद्दीपित होता है, वही कर्म कर्म है और सभी अकर्म। जिस मार्ग में भगवत्-भाव नहीं है, वह प्रेय होने पर भी त्याज्य। और जिससे भगवत् भाव उद्दीपित होता है, वह अप्रिय होन पर भी ग्रहणीय है। सत्य की प्राप्ति करना मनुष्य का कर्त्तब्य है। और श्रेय का पथ अमृत की दिशा में। प्रेय हुआ जो आपात मनोरम परिणाम में विषकर, अमंगल, अशान्ति की ओर, मृत्यु की दिशा में।

× × ×

सत्य लाभ ही मनुष्य का एक मात्र लक्ष्य होना उचित है। गृहस्थाश्रम जहाँ, वहाँ श्रम नहीं होना चाहिए। मन में दुःख-अशान्ति होना ही श्रम है, उधर नहीं जाना चाहिए। उधर जाने पर विघ्नकारी शक्ति। आनन्द, विघ्ननाशक, मंगल, कल्याण शक्ति का आश्रय लेना ही गृह में शान्ति की स्थापना। मनुष्य को इसके लिए विशेष चेष्टा करना कर्त्तव्य है। जो चतुर बुद्धिमान, बुद्धिमती और जो लोग गुरु, भगवान् पर निर्भर रहते हैं, श्रद्धा के साथ सत्पथ की ओर त्याग का आश्रय लेकर चलते हैं, उन्हें तो शान्त शान्ति की दिशा को अपनाकर, अपनी साधना के अनुकूल मार्ग पर चलना पड़ता है, सभी कर्म-धर्म की ओर दृष्टि रखनी पड़ती है :

× × ×

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सत्यस्वरूप, सुखस्वरूप, आनन्दस्वरूप, एक मात्र भगवान्। ब्रह्मानन्द आत्मानन्द के बिना और कुछ मायने नहीं रखता। और कुछ खड़ा नहीं हो पाता। जहाँ कुछ खड़ा होता है, वह सब भ्रान्ति है। अपने को पाने की चेष्टा। बुलावा मनुष्य का स्वभाव। अभाव दूर करने के लिए ही बुलाते-पुकारते हैं। मनुष्य-जीवन का उद्देश्य होना चाहिये भगवत् प्राप्ति। जो त्याग हो जाता है, उसी को त्याग देने की चर्चा चलती है। जो नित्य सत्य है वही ग्राह्य है। जो स्वयं बद्ध है, आकर्षण भी उसका बद्ध में ही है। इसी का नाम है जीव भाव। गुरु के आश्रय में अनित्यता उपलब्ध की जा सकती है। सब कुछ गुरु की शक्ति से सम्भव है। धैर्य खो गया है समझ लेने पर चेष्टा बन्द नहीं करना। बार-बार केवल चेष्टा। प्राण रहते चेष्टा नहीं छोड़ना चाहिए। उनके निकट प्रार्थना करो कि चौबीसों घण्टे उनके चरणों में मन लगा रहे। जिनका गुरुकरण हो गया है, वे गुरु का आदेश लेकर पूजा, जप, ध्यान, पाठ कीर्त्तन, सत्संग आदि में चौबीसों घण्टे अपने मन को लगाये रखते हैं। अपने में जितनी शक्ति है उसे काम में लगाये रहो। उस वक्त वे तो हैं ही, सम्पूर्ण कर देते हैं।

× × ×

कर्त्तव्य है जो समझ रहे हो, उसे करने की चेष्टा तो है ही—हो रहा है, पर विशेष कर्त्तव्य तो भगवत चिन्ता—मैं कौन हूँ—यह जानने की इच्छा जो उत्पन्न करता है उसे जानने में मन लगा रहे। इस ओर विशेष चेष्टा की आवश्यकता है। नित्यकर्म स्मरण रहे। अवसर मिलते ही स्मरण। वे ही तो एकमात्र सर्वरूप में, सर्वभाव में प्रकाशित हैं, उसी बोध के लिए।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अमावस्या की रात्रि में मातृ-सत्संग

—कुमारी गीता बनर्जी—

अमावस्या की रात्रि थी। उस दिन शनिवार था। वाराणसी-आश्रम में माँ अपने गंगा के किनारे वाले नीचे के कमरे में लेटीं थीं। स्वामी परमानन्दजी, भास्करानन्दजी, गोपालदास, शक्तिदा आदि माँ के पास बैठे थे। हम कन्यापीठ की लड़कियाँ भी एक ओर बैठी थीं। इसके पहले माँ ने रात्रिके भोजन के समय ही हमसे कहा था कि "आज अमावस्या है।" पुनः सबके सामने शक्तिदा ने बात उठाई कि माँ! आज अमावस्या तथा शनिवार है। शनिवार, अमावस्या की रात्रि में बंग देश में माँ काली की विशेष पूजा की जाती है।

माँ—बहुत वर्षों के बाद इसप्रकार शनिवार के दिन अमावस्या पड़ी थी। पहले सब रात्रि जागरण कर प्रसाद लेते थे। अब सब बन्द हो गया है।

स्वामीजी—माँ! विभूतिबाबू, शक्ति के पिता, भूपतिबाबू, भूदेव-बाबू—इनलोगोंका खूब उत्साह था। सब पुराने लोग चले गये हैं।

माँ—सर्वप्रथम पूर्णिमा की पूजा निशिबाबू के पुत्र ने अमावस्या में पूजा प्रारम्भ की। अमूल्य की माँ (भोलानाथ की बहन) रसोई करती थी। निशिबाबू, रानू के नाना के घर रसोई होती थी। चार प्रकार की दाल बनती थी। खेसारी, चना, अरहर तथा मूँग की दाल बनती थी। दाल की शुक्तो (एक प्रकार की बंगाली सब्जी) तो आजकल बनती ही नहीं। दाल की शुक्तो माने कड़वा दाल (करैला आदि मिश्रित दाल)। खेसारी दाल की कड़वा दाल बनती थी। दीपावली के दिन होती थी। कालीपूजा के भोग सब सवेरे खाते थे।

शक्तिदा—माँ! क्या अन्नकूट नहीं होता था?

माँ—इधर (उत्तर प्रदेश) आकर ही अन्नकूट का प्रारम्भ हुआ है। वहाँ दीपावली होती थी। दूसरे दिन सब प्रसाद लेते थे। कालीपूजा का प्रसाद खाते-खाते धूप निकल आती थी ऐसा भी इस शरीर ने देखा है। सबके खाते-खाते शाम के चार बज जाते थे। उन दिनों प्रसाद के प्रति तथा ठाकुर-देवता के प्रति आदर का एक भाव था। सब खुले मैदान में बैठ जाते थे। पत्तल में खाते थे और पत्तल में बाँध कर छाती से लगाकर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रसाद घर ले जाते थे। सब लोग कपड़े में बाँध-बाँध कर ले जाते थे। प्रसाद का खूब सम्मान था। न बचने पर अपने पत्तल से ही घर ले जाने के लिये थोड़ा उठा कर रख देते थे। तीन-चार सीमेण्ट के बने चौबच्चे (हौज) थे। इस शरीर ने कहा कि एक कपड़ा धोकर उससे चौबाच्चो को पोंछकर फिर उसमें कपड़े बिछाकर खिचड़ी डालो। वह कपड़ा फिर किसी को दे दिया जाता था। तब तो इतने मकान आदि नहीं थे। एक टीन की झोपड़ी थी, वहीं रसोई बनती थी। एक टीन का हॉल था। इस शरीर के लिये एक कुटिया और मन्दिर था। जंगल के भीतर आश्रम। अतः सब मैदान में ही खाते थे। रायबहादुर योगेशघोष का पुत्र प्रफुल्ल घोष-जिन्हें सब कहते थे जयदेवपुरके इतने बड़े अफसर, वे भी जमीन पर बैठकर पत्तलमें प्रसाद खाते थे। घर में कुर्सी में बैठकर खाते थे, जमीन में बैठने का अभ्यास नहीं था फिर भी पैर फैलाकर बैठ जाते थे। मूसलधार वृष्टि हो रही है। इसके बीच में भी पत्तल बिछा-कर सब गरम-गरम खिचड़ी खा रहे हैं। जो लोग परिवेशन कर रहे हैं, वे भी भींग रहे हैं, जो खा रहे हैं, वे भी भींग रहे हैं। यह शरीर तो कुछ देखता नहीं था। कभी-कभी इस शरीर को पकड़ कर कोई ले जाता था तब थोड़ा देख लिया। (उन दिनों माँ अधिकतर समाधिस्थ ही रहतीं थीं।) भूपतिबाबू इस शरीर को कहते थे "आओ ठाइरेन, देखकर जाओ।" वे कभी-कभी माँ को ठाइरेन कहकर पुकारते थे। ठाइरेन अर्थात् ठाकुरानी। कभी-कभी कड़ी धूप में हो सब पत्तल बिछाकर खुले मैदान में बैठ जाते थे। सिर गरम हो रहा है। कोई बाल्टी में जल लेकर सबके सिर में जल दे रहे हैं। कुछ लोग धूप से बचाने के लिये सबके सिर के ऊपर कपड़े पकड़े खड़े हैं—इस शरीर ने यह भी देखा है। अमीर-गरीब का कोई विचार नहीं था। तब मुँह देख-देखकर प्रसाद नहीं दिया जाता था। इतना अविचार नहीं था। सभी एक लाइन में बैठ जाते थे। तब सभी उसी स्टेज में थे, जहाँ छुआछूत का प्रश्न नहीं रहता। एक ही लोटा था। सभी उसी से जल पीते थे। सभी अपने आप ही सब कुछ करते थे। आजकल जैसे चार, पाँच जन व्यवस्था के लिये रहते हैं तब यह सब नहीं था। तब इतना भण्डार आदि भी नहीं था। चावल, दाल, स्तूपीकृत रूप में एक ओर रखा है, उसमें से ले ले कर सब रसोई बना रहे हैं। दुकानदार आ-आ कर सब चीज दे जाते थे। बड़े-बड़े बर्तन, बर्तनों के दुकानदार दे जाते थे। चावल, दाल के दुकानदार चावल-दाल दे जाते थे। बड़ी-बड़ो कीर्तनपार्टियाँ आतो थीं। एक पार्टी कीर्तन कर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रही है। पूरा दिन कीर्तन चलता था, और एक पार्टी कहती थी—मेरा पाला कीर्तन (बंग देश का एक कीर्तन विशेष) गाना नहीं हुआ।

(इसके बाद माँ ढाका के आश्रम के विषय में थोड़ा बोलीं।)

माँ—सीढ़ी से चढ़ कर सब ऊपर जाते थे। अनेक आम के वृक्ष थे। आमके वृक्षों से मधु टपकता था। एक वृक्ष से थोड़ा कम। बरामदे में इतना मधु टपकता था कि सब लिसर-लिसर हो जाता था। बरामदे में पैर नहीं रखा जा सकता था। अखण्डानन्द (गुरुप्रिया दीदी के पिता) का तब संन्यास नहीं हुआ था। रोज टमटम से आते थे। टमटम माने छोटा इक्का गाड़ी। कभी-कभी वे पैदल भी आते थे। उनके घर से आश्रम शायद एक मील दूर था। खुकुनी भी रहती थी। काला जीरा या सफेद जीरा छींक कर रसोई होती थी। अखण्डानन्द उसी में से थोड़ा एक बार दिन भर के लिये खाते थे, फिर कुछ नहीं। पूरा दिन ध्यान-जप करते थे।

गोपालदा—माँ! क्या तब भोजनादि में इतनी छुआछूत नहीं थी?

माँ—इतनी नहीं थी। फिर भी ब्राह्मण लड़के ही रसोंई बनाते थे। परिवेशन भी ब्राह्मण ही करते थे। परन्तु सब एक साथ खाते थे। अतः छुआछूत तो हो ही जाती थी। फिर भी जो शुद्ध पवित्र भाव से रहते थे, उनके लिये अलग से रखा जाता था। जो लोग रसोई बनाते थे, उनके लिये भी अलग से रखा जाता था। विधवाओं में जो शुद्धाचारी हैं, उनकी रसोई मटरी पिसिमा करतीं थी। एक बड़े टोकस (भगौने) में दाल बैठा देती थी। गल जाने पर अन्य किसी बर्तन में छौंक देती थी और एक में चावल बैठा देती थी और एक में सब्जी। दाल, भात, तरकारी और क्या चाहिए? रसोई हो जाने से पूरी जगह धो देतीं थीं। मटरी पिसिमा का रसोई का ढंग ऐसा ही था। सब इधर-उधर बैठ जाते थे। रसोई हो जाने से बाल्टी-बाल्टी भर कर मिट्टी के सकोरे आदि से सबको परोसा जाता था। कलछी आदि कुछ नहीं। तब इतना परिवेशन का फैशन नहीं था।

शक्तिदा—माँ! ढाका में शायद सबसे अधिक काली मन्दिर है?

माँ—इस शरीर ने तो एक ही कालीबाड़ी देखी है और कहीं भी नहीं गया। साधुओं का स्थान। साधुओं ने ही सब किया है। तीन जन साधु विशेष। एक तालाब था। साधुओं का ही बनवाया हुआ। उसी तालाब में ही खाकर सभी हाथ धोते थे। दो तालाब बन्द हो गये थे। किन्तु देखने से समझ में आ जाता था कि वहाँ तालाब था।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गोपालदा—माँ क्या वहाँ कोई फकीर की समाधि थी ?

माँ—हाँ, एक फकीर की समाधि थी।

इतने में ही अन्नपूर्णा मन्दिर में अमावस्या की पूजा की आरती आरम्भ हो गई। माँ ने कहा "तुम लोगों की आरती शुरू हो गई है।" शिवानीदी ने काली का प्रसाद किशमिश तथा बतासा लाकर माँ को दिया। माँ ने स्पर्श कर कहा "तुम खाना"। माँ गोपाल मन्दिर में सोने के लिये जाते सयय रास्ते में बोलीं "वाह ! खिचड़ी की अच्छी सुगन्ध आ रही है। तुम लोग प्रसाद लेना।" हम लोग भी माँ के चरणों में प्रणाम कर मातृकृपा प्रसाद प्राप्त कर, माँ काली के प्रसाद ग्रहण कर सोने चले गये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"प्रातः स्मरणीया श्री श्री माता आनन्दमयी के शुभागमन पर"

—श्री कान्तानन्द—

अतीव निर्मल एवं पवित्र जलवाहिनी, दर्शन मात्र से सहृदय सज्जनों के समान मानव मात्र को परम आमोददायिनी, भगवती भागीरथी के सुविस्तृत तट पर दिग्दिगन्त में विश्वकल्याणकारी, एवं विद्या का दिव्यतम सन्देश पहुँचाने वाला, प्रकृति सुन्दरी के परम सौन्दर्य सम्पन्न तटपल्लव से आवृत बालसूर्यसामञ्जलमय आध्यात्मिक प्रभा से प्रदीप्त, प्राचीन आनन्दमयी आश्रम तथा बालिकाओं के जीवन निर्माण का आधार केन्द्र "आनन्दमयी कन्यापीठ" है। इस कन्यापीठ की निर्माणकर्त्री परमपूज्य परमादरणीया चिरस्मरणीया, ब्रह्मलीन श्री श्री गुरुप्रिया आनन्दगिरिजी महाराज द्वारा स्थापित यह संस्था परम मनोरम है तथा कल्याणकारी है।

प्रभात का सुहावना सुन्दर समय था, प्रभात को अपने घर तक पहुँचाने वाले दोनों साथी अन्धकार तथा चन्द्रिका अपने-अपने घर के द्वार पर पहुँचे ही थे कि जल्दी से हँसती हुई ऊषा स्वागत करने के लिए द्वार पर आई, पक्षीगण कलरव करने लगे, मकरन्द भरी वायु मन्द मन्द चल रही थी, सहसा प्राची के क्षितिज पर भगवान् भास्कर मुस्कराते हुए दृष्टिगोचर होने लगे, भ्रमर कमलों की पंखुड़ियों में से निकल निकल कर अम्बुजों पर गुनगुनाने लगे। आश्रम में उद्यान और वाटिकाओं में पराग भरे पुष्प खिलखिलाकर हँस रहे थे। वृक्षों की हरीतिमा नेत्रों को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर रही थी। हवा कभी-कभी शिथिल पत्रांक में सोई हुई कोमल कलिकाओंका सिर पकड़ कर हिलाती थी। चिड़ियाँ फुदक-फुदक कर कभी-कभी इस शाखा से उस शाखा पर जाती है और अपने बच्चों का मुख कमल देखकर फिर लौट जाती हैं, विद्यालय के प्राङ्गण में देवोपासनार्थ हरीभरी दूब लगाई गयी है। उस पर पड़ी हुई ओस की बूँदे मोती जैसी प्रतीत होती है। प्रकृति के मनोरम दृश्यों को देखकर हृदय विकसित हो जाता है। त्रिभुवन पावनी पुण्यसलिला गंगा कर्णमधुर कलकल निनाद करती है। एक तरफ दिव्य मन्दिर में भगवान विश्वनाथ और अन्नपूर्णाजी विराजमान है। दूसरी ओर परम मनोहर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यज्ञशाला है, जिसमें प्रतिदिन वैदिक मन्त्रों द्वारा आहुतियाँ दी जाती हैं। प्रातः काल मन्दिरों में देवोपासना शुरू हो जाती है। जैसे ही ६ बजते है तुरन्त घंटो बजती है। घंटी के साथ साथ शुद्ध ब्रह्मचारिणी बालिकायें देवमन्दिर में आ गयीं। पूजा प्रारम्भ हुई। मातृपूजा, शिवपूजा, गणेश-पूजा इत्यादि पूजा के पश्चात हनुमान चालीसा, वेदपाठ करके बालिका वृन्द गीतापाठ कर रहीं थीं। इधर अकस्मात संयोगवश प्रातः स्मरणीया माँ अन्नदा आश्रम की स्थापिका, शुद्ध अन्तःकरण, अतिपवित्र, विनय-शीला गंगा मां काफी दिनों से अस्वस्थ थीं, और मातृ दर्शन के लिए व्याकुल थीं। मां बायीं और सीधे गंगादी के आश्रम में गयीं। फिर माँ ने भक्तराज उभयदा को दर्शन दिये, वे भी काफी दिनों से बीमार थे। इधर हमलोगों को कोई खबर नहीं थी कि श्री श्री माताजी पधार रही हैं। माताजी का कमरा भी तैयार नहीं था। यहाँ तक कि माताजी के भोजन की भी कोई व्यवस्था नहीं थी। परन्तु प्रभु तो अपना कार्य स्वयं करवा लेते हैं। सब बालिकाओं ने मिलकर इस प्रकार तैयारी की कि मानों बहुत दिनोंसे माँ यहीं पर है। माताजो को किसी प्रकार की असुविधा नहीं हुई। जयादी और गीतादी ने माँ की रसोई की। बानीदी ने माता जी के साथ आये हुए अतिथियों का भोजन तैयार किया, अनायास ही महात्मा तथा महापुरुषों की कृपा से मातृदर्शन हो गया। माताजी नारा-यण स्वामीजी गंगा तथा उभयदा के लिए ही आयीं थी।

माताजी आयों और विद्यालय के बरामदा में बैठ गयीं, महाधार्मिक, परमयोगी, तपस्या की साक्षात् मूर्त्ति आदर्श संन्यासी परमपूज्य श्री नारायण स्वामीजी को बुलवाया। उसके पश्चात् माताजी ने स्वामीजी से कुशल समाचार पूछा और इसी बीच तपोधन, आदर्श ब्रह्मचारी योगे-शदा को बुलवाया। सन् १९८१ की शुक्ल पक्ष पंचमी के सुबह ११ बजे माताजी के आदेशानुसार योगेशदा का संन्यास हो गया। माताजी, नारायण स्वामोजी निरंजनानन्दजी (योगेशदा) आश्रम के प्राङ्गण में कुर्सियों पर बैठे थे, यह कितना सुन्दर दृश्य था, इसका वर्णन करते नहीं बनता।

जिस प्रकार राम ने एक ही साथ बहुत से कार्य किये थे, ठीक उसी प्रकार माँ ने दो घंटे के अन्दर सब से मिलना, संन्यास देना, आदि कार्य कर लिये। राम ने एक तरफ जटायु को मोक्ष और अहिल्या का उद्धार किया, असुरराज रावण का वध किया, इसी प्रकार माँ के लिए कोई भी कार्य असम्भव नहीं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"हनूमानब्धिमतरद् दुष्करं किं महात्मनाम ॥"

माताजी गुजरात से वृन्दावन, वृन्दावन से कलकत्ता, कलकत्ते से काशी, काशी से फिर वृन्दावन गयीं। यह कार्य माताजो जैसी महाशक्ति के अलावा दूसरों से कदापि नहीं हो सकता। माताजी अनन्त रूपों में विराजमान हैं। माताजी के गुण अनन्त हैं जो कहे कि मैं उनके गुणों का वर्णन कर सकता हूँ तो वह मूर्खता करता है। यह कभी सम्भव हो सकता है कि कोई पृथिवी के धूलि कणों को गिन ले। लेकिन समस्त शक्तियों की आश्रय भगवती माँ आनन्दमयी के अनन्त गुणों का कभी किसी प्रकार पार नहीं पा सकता। महिम्न स्तोत में लिखा है—

"लिखति यदि गृहीत्वा शारदासर्वकालम ।
वदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥"

■

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माँ के साथ दुबराजपुर में

—श्री शिवानन्द—

माँ दुबराजपुर आई हैं। दुबराजपुर एक उन्नतशील गाँव है। यहाँ राजयक्ष्मा रोगियों का एक अस्पताल है, जिसका नाम 'निरामय' है। अस्पताल के निकट ही एक शिव मन्दिर है। इस मन्दिर में शिव-प्रतिष्ठा के समय भी माँ यहाँ आई थीं।

हम सब स्थानीय अतिथि-गृह में ही ठहरे। माँ को शिव मन्दिर के निकट एक नव-निर्मित आवास में ठहरायी गयीं हैं। यह स्थल अतीव मनोरम है। यहाँ मैदान में थोड़ी-थोड़ी दूर पर निर्मित आवासगृह एक मुक्त वातावरण से घिरा हुआ है।

माँ के आगमन पर अनेकों दर्शनाभिलाषी आये हैं। उनका सान्निद्ध पाकर भक्तजन आनन्द से विभोर हो गये। यह आनन्दाभूति उनके मुख-मण्डलों से छिटककर बाहर निकलती हुई प्रतीत हो रही है।

एक दिन माँ ने शिवजी की षोडशोपचार से पूजा तथा विशिष्ट भोग की व्यवस्था की। वे शिव मन्दिर में बैठीं और उनकी उपस्थिति में ही महादेव की महापूजा अत्यन्त सुचारुरूप से सम्पन्न हुई। भोग की व्यवस्था भी विराट रूप में हुई। ऐसी पूजा तथा भोग का वैभव पूर्ण आयोजन अनुमानतः वहाँ के निवासियों ने पहले कभी नहीं देखा होगा। सभी के मुख पर अपूर्व आनन्द की छटा दृष्टिगोचर हो रही थी।

एक दिन माँ को अस्पताल के रोगियों के दर्शनार्थ ले जाया गया। यह अस्पताल डा० गुनेन राय महाशय के द्वारा ही स्थापित हुई है। डाक्टर साहब अत्यन्त कर्मठ एवं विलक्षण व्यक्ति हैं। माँ कह रही थीं कि 'रोग-रूपी-जनार्दन' की सेवा की व्यवस्था यहाँ पर अत्यन्त सुन्दर है। यहाँ तीन, साढ़े तीन सौ रोगियों की सेवा हो रही है। आज माँ आयेंगी, इस कारण प्रत्येक रोगी को अपने स्वच्छ एवं व्यवस्थित शय्याओं पर बैठाया गया है। वे सब माँ के दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे थे। ज्यों ही माँ ने वहाँ प्रवेश किया त्यों ही अधिकांश रोगियों ने हाथ जोड़, नत-मस्तक हो उनको प्रणाम किया। माँ के साथ उपस्थित कुछ भक्तों ने माँ से प्रार्थना की—'माँ इन सबको कुछ उपदेश दें।' माँ ने अपने अननुकरणीय सुललित कंठ से गाया—"श्री राम, जय राम, जय जय राम।' कुछ देर पश्चात् माँ ने फिर कहा—जय शिव शंकर, बम् बम् हर हर।"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्त में माँ ने रोगियों को, "श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव"—यह नाम उनके साथ गान करने के लिए कहा। माँ के कहने पर रोगियों का दल यह नाम गान करने लगा।

नाम कीर्तन समाप्त हो गया। विशाल कक्ष नाम की ध्वनि से गूँज उठी। माँ रोगियों के ऊपर अपने दोनों हाथों से फूल विखरने लगी। कहने लगीं—"रोग रूपी भगवान् पर पुष्प चढ़ा रही हूँ। एक विचित्र भाव से उपस्थित जनों के चित्त भर गये।

थोड़ी देर बाद पुनः कुछ भक्तों ने माँ से रोगियों को आशीर्वचन देने के लिये आग्रह किया। माँ ने कहा—"क्या कहूँ—हरि कथा ही कथा हैं, और सब तो वृथा व्यथा है। जहाँ राम हैं, वहीं आराम है, जहाँ राम नहीं, वही व्याराम—बेआराम।" यह कहते समय माँ के चेहरे पर एक अभूतपूर्व कारुण्य का भाव छा गया। रोगी अपलक दृष्टि से माँ की ओर देखने लगे। माँ ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा—"जिस देवता का नाम अच्छा लगे, उसी को मन से दुहराते रहो। इस अक्षर रूपी नाम का कभी क्षय नहीं होता। इस अक्षर रूप में ही भगवान् सबके हृदय में निरन्तर विराजते हैं। नाम के साथ ही नामी विराजमान रहते हैं।'

'देखो 'पिताजी' कहकर पुकारने से ही पिताजी तुम्हारे पास आ जाते हैं। यदि ईश्वर को पुकारा जाय तो वे बिना आये नहीं रह सकते। और वे निकट आते ही समस्त दुःख-कष्टों का निवारण कर देते हैं। इसीलिए जितना सम्भव हो उनके नाम को सर्वदा मन ही मन उचारा करो।"—ऐसा कहती हुई माँ ने सब की ओर हाथ जोड़कर, एवं सबको माता-पिता आदि शब्दों से सम्बोधित करती हुई कहा—"मेरे पिता, माता, भाई-बन्धु, अब मुझे आज्ञा दो, अब मैं जाऊँ।"

क्या हो गया ? माँ की इस वाणी में न जाने क्या जादू था कि जैसे ही माँ चलने लगीं, सब रोगियों की आँखें अश्रु-प्लावित हो गयीं। कुछ रोगी तो अपने को सम्हाल भी नहीं सके और दौड़कर माँ के पास आ उनके चरणों में रोने लगे। कहने लगे—'माँ आप चली जायेंगीं। माँ, इस दुःखमय जीवन में फिर कब आप आयेंगी। आप का दर्शन........" आगे का शब्द सुनाई नहीं दिए। इस दृश्य को देखकर उपस्थित सभी के आँखों में आँसू आ गयीं। माँ थोड़ी देर रुककर सभी को धीरज बँधाती हुई वहाँ से चली आईं।

उस दिन का यह दृश्य मेरे चित्त में अविस्मरणीय बना हुआ है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वहाँ से लौटने पर माँ को कुछ देर विश्राम के लिए कमरे में ले जाया गया, परन्तु उसी समय प्रसाद पाने के लिए अपने सुपुत्र के साथ आई हुई हेतमपुर की राजमाता को देखकर—"आओ, माँ आओ" कहकर माँ ने उनको बुलाया और वे उनके पास आकर बैठ गयीं।

माँ की उपस्थिति के शिवपूजा का प्रसाद माँ ने उनको भिजवा दिया था। उस प्रसाद का उल्लेख करती हुई कृतज्ञता के स्वर से राजमाता कहने लगीं—'माँ, आप जगन्माता हो, इसलिए मेरे मन के विचारों को आप समझ गयीं थीं। मुझे भगवान् का प्रसाद बहुत ही अच्छा लगता है, माँ। घर में ठाकुर जी के श्री विग्रह की सेवा है, इसलिये बचपन से ही प्रसाद के अलावा और कुछ नहीं खाती हूँ। कल ही जब मैं ऐसा सोच रही थी कि माँ ने शिवपूजा का कितना विशाल आयोजन किया था, परन्तु मुझे तो कोई सूचना नहीं मिली, ठीक उसी समय मैंने देखा कि आपने मेरे लिए कितने ही प्रसाद भेज दिये। उस समय मैं भोजन कर चुकी थी, इसलिए अन्न प्रसाद न ले सकने के कारण मन में अत्यन्त दुःख भी हो रहा था, इतने में ही आप के द्वारा भेजे गये एक व्यक्ति ने जाकर मुझसे कहा—"माँ ने आप को कल मध्याह्न में उनके वहाँ प्रसाद पाने के लिये कहा है।"

माँ, क्या कहूँ, उस व्यक्ति से यह समाचार सुनते ही मुझे इतनी खुशी हुई कि मैं उसे अपने शब्दों से व्यक्त नहीं कर सकती। माँ आप अन्तरयामी हैं। और क्या कहूँ, सब तो जानती ही हो। माँ भी राजमाता के साथ असीम स्नेह उड़ेलती हुई और बातचीत करती रहीं।

प्रसाद पाने के पश्चात् माँ को प्रणाम कर राजमाता चली गई।

देखते ही देखते माँ का वहाँ से चलने का दिन आ गया। आज ही माँ चली जायेंगी। इसलिये थोड़ा सा समय निकालकर मैं दुबराजपुर, गिरिडांगा घूम आयीं। गिरिडांगा उन्नतिशील ग्राम है। ग्राम का परिवेश बहुत ही सुन्दर है। इधर-उधर बिखरे हुए गृहों को देखने से यह प्रतीत होता है कि मानो मुक्ति के आनन्द में सारा गाँव विभोर हो रहा है। उन्मुक्त आकाश के नीचे, मुक्त प्रकाश व पवन मण्डल में गिरिडांगा हमारे परिचित पृथिवी से सर्वथा भिन्न प्रतीत हो रहा था।

समय न होने के कारण शीघ्र ही लौटना पड़ा। गाड़ी में बैठते ही—गाड़ी चलने लगी। लोग गन्तव्य स्थान की चर्चा करने लगे, परन्तु मेरा मन यहाँ बीते दिनों की स्मृतिभार से भाराक्रान्त हो उठा।

■

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

केवल वह और यहीं

—श्री जयनाथ कौल 'सेवक'—

जो हर जगह वह एक है, जो है यहीं अभी यहीं ।
जो है हृदय में बस रहा, जिसके सिवा कुछ भी नहीं ।।१।।

हम से अलग वह है नहीं, जाता नहीं कभी कहीं ।
देखें उसे, ढूँढ़े नहीं, है दूसरा कोई नहीं ।।२।।

देखें किसे, कि सब स्वयं है देखने वाला वही ।
देखें वह अपने आप को, स्वयं मकां स्वयं जमीं ।।३।।

फिर हम कहाँ और तुम कहाँ, अनन्त ज्योति है जहाँ ।
अस्ति हमारी कुछ नहीं, कभी नहीं, कहीं नहीं ।।४।।

सब भूल जा, जो कुछ सुना जो कुछ पढ़ा सब भूल जा ।
हो जा स्थिर, सेवक तेरे स्वामी वह दिल में है यहीं ।।५।।

■

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नीति शास्त्र का स्वरूप

–श्री हरिश्चन्द्र (हरीशबाबू)–
पी॰एच॰डी॰ (दर्शन शास्त्र)

नीति शास्त्र प्राकृतिक विज्ञानों से भिन्न है। प्राकृतिक विज्ञानों के अध्ययन से प्राप्त तथ्य किसी प्रयोजन की सिद्धि का साधन हो सकता है। स्थिति ठीक विपरीत भी हो सकती है; अर्थात् उसका उपयोग विनाशकारी भी हो सकता है। आधुनिक शास्त्रादि इसके उदाहरण हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राकृतिक विज्ञान क्या है इस पर विचार करते हैं अथवा कोई घटना कैसे घटित होती है। ये किसी साध्य या आदर्श को मानकर अध्ययन नहीं करते।

नीति शास्त्र इस तरह प्राकृतिक विज्ञानों से अलग है कि वह अपने समझ मान के रख कर अध्ययन करता है। उसका सम्बन्ध किसी साध्य या आदर्श से है, जिसे वे प्राप्त करना चाहते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं कि नीति शास्त्र का अध्ययन किसी साध्य से सीधे सम्वन्धित हो। तर्क शास्त्र (logic) और सौन्दर्य शास्त्र (Aesthetis) इसके समकक्ष प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार नीति शास्त्र मनुष्य के कार्यों के परिपेच्य में औचित्य एवं शुभत्व का अध्ययन करता है, उसी तरह तर्क शास्त्र सत्य प्राप्ति के सामान्य नियमों एवं सौन्दर्य शास्त्र सौन्दर्य सृष्टि एवं सौन्दर्य बोध की प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है।[1] इस प्रकार के अध्ययनों का सम्बन्ध मूल्य (Valule) के मानकों से होता है, घटनाओं के विश्लेषण से नहीं।

सामान्य रूप से मानव जीवन में सत्य (Truth) सौन्दर्य (Beauty) और शुभत्व (Goodess) के सर्वोच्च मूल्यता स्वीकार्य है। इनका सम्बन्ध हमारी चेतना के तीन संस्थानों ज्ञान अनुभूति और क्रिया से है। कहने का तात्पर्य यह कि हम इन तीनों की अन्तर्दृष्टि से कुछ न कुछ समन्वित है। सारांश यह कि नीति शास्त्र सौन्दर्य शास्त्र एवं तर्क शास्त्र सत्यम्

---

१. इस प्रसंग में D. ४ W. C. Johnson का logic भाग १, पृष्ठ और २२५ द्रष्ट हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(Truth) शिवम् (Goodness) सुन्दरम् (Beauty) का यथासम्भव विधिवत् अध्ययन करते हैं।

नीति शास्त्र व्यवहारिक विज्ञान नहीं है

चिकित्सा विज्ञान इंजीनियरिंग आदि व्यावहारिक विज्ञानों की तरह नीति शास्त्र व्यावहारिक विज्ञान (Praclic Scienee) नहीं है। नैतिक सुधार के अध्ययन को इस वर्ग में रखा जा सकता है, तब वह सामान्य शिक्षा शास्त्र का अध्ययन बन जाता है। एक सैद्धान्तिक अध्ययन के रूप में नीतिशास्त्र सौन्दर्य शास्त्र एवं तर्क शास्त्र की तरह व्यावहारिक विज्ञानों से अलग है। अतः नीति शास्त्र आचरण को शुभ एवं उचित बनाने के सामान्य शर्तों का अध्ययन करता है।

उपर्युक्त तथ्य का अभिप्राय यह नहीं है कि नीति शास्त्र के अध्ययन से अथवा नीति शास्त्र का अध्येता नैतिक होगा ही। हाँ, उससे इस बात की अपेक्षा की जा सकती है। चिन्तक व्यक्ति कर्मठ व्यक्ति से कहीं पीछे ही रहता है।

मानवीय अध्ययनों का उद्देश्य पथ प्रशस्तक सिद्धान्तों का प्रस्तुतीकरण है, न कि व्यावहारिकता का कारण। मानव जीवन में कर्म का भाग अधिक आता है, चिन्तन मनन का कम।

नीति शास्त्र आचरण की कला नहीं है

अब यह बात सर्व स्वकार्य हो गई है कि मनुष्य का चरम लक्ष्य सत्यम् शिवम् सुन्दरम् है। हम ऐसा क्यों चाहते हैं ? यह बात असंगत प्रश्न है। फिर भी इन लक्ष्यों का ठीक-ठीक स्वरूप क्या है, अथवा वे नियम क्या हैं जिनके द्वारा सम्भव है, तत्काल समझ में नहीं आता।

इन नियमों के पालन को एक कला कहा जा सकता है। इस आधार पर हम विचार और आचरण की एक कला की स्थिति को भी हम मान्यता दे सकते हैं। लेकिन तर्क शास्त्र को विचार की कला कहना अनुचित है। इसी प्रकार न तो सौन्दर्य शास्त्र को ही सौन्दर्य सृष्टि के उपस्कार कलाओं से अलग ही किया जा सकता है।

इसी प्रकार नीति शास्त्र की आचरण की कला कहना भी उचित नहीं है। विज्ञान शब्द तो भी भ्रमोत्पादक है। विज्ञान से हम संसार की समस्त आस्तित्वमय वस्तुओं के एक वर्ग विशेष के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं। कला विशेष के अध्ययन से वर्ग विशेष की व्यावहारिकता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सीखते हैं। मानवीय अध्ययनों में पूर्वोक्त सर्वोच्च मूल्यों के स्वरूप को समझने का प्रयत्न निहित होता है। ज्ञान मूल्यांकन और विशेष प्रकार के कर्म उसके सहायक होते हैं।

अब उपर्युक्त प्रकार के शास्त्रों को दर्शन का एक अंग स्वीकार कर लिया गया है। कहा यह जाता है कि सत्य, शिव और सुन्दर का अध्ययन ही दर्शन का मूल विषय है, क्योंकि जैसा नाम से स्पष्ट है—'दर्शन का लक्ष्य लौकिक वस्तुओं का ज्ञान बढ़ाना नहीं बल्कि परमार्थ का साक्षात्कार करना है।'[1]

उपर्गुक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि सभी वस्तुएँ या अध्ययन गलत हैं। वस्तुतः नीति शास्त्र का इतिहास थोड़े बहुत गलत-सही का इतिहास है। किन्तु इन गलतियों को मनुष्य के बुद्धि को विकृति नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में इस विषय की जटिलताओं को सामान्य रूप से संकेतित करना अभिरिष्ट होना चाहिये। क्योंकि इन्हीं जटिलताओं के कारण ही उपर्युक्त गलतियों का आभास होता है।

क्या आचरण की कोई कला है

पूर्वोक्त विवेचन से हमें दृष्टिगत हुआ कि नीति शास्त्र आचरण की कला का शिक्षक नहीं है; और यह तर्क शास्त्र और सौन्दर्य शास्त्र के सन्निकट है। परन्तु तर्क शास्त्र विचार करने की कला का पथ प्रदर्शक है तो सौन्दर्य शास्त्र का सम्बन्ध ललित कलाओं से है। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि नीति-सास्त्र आचरण की कला से पथ प्रदर्शक सिद्धान्तों का दाता तो है ही।

उपरोक्त कथन के विरोध में यह कहा जाता है कि आचरण का रहस्य क्रान्ति या संकल्प की उत्कटता में है न कि किसी विषय की कुशलता में। अच्छे चिन्तकार का मापक उसकी सुन्दर कृति एवं अच्छे विचारक का मापक उसके अच्छे विचार है। किन्तु अच्छा मनुष्य वह है जो कि सुन्दर कार्य करता है, न कि कर सकता है। आचरण कोई क्षमता (Capacity) नहीं, बल्कि आदत है। अरस्तु ने आचरण को चुनाव की आदत कहा है। हम उद्देश्य (Puapare) के औचित्य का चुनाव करते हैं न कि तर्क की यथार्थता का और न सौन्दर्य शास्त्र की सुन्दरता का।

---

१. बोसान्के (Boranguet) का निवन्ध संग्रह Scince and Philosophy पृष्ठ I।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नीति शास्त्र का सम्बन्ध कर्म से है, वह इस तरह कि तर्क शास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र का सम्बन्ध कर्म से सीधे नहीं है। और भी, क्योंकि काम करने में ही सद्गुण का अस्तित्व है और सद्गुण का रहस्य कृति या संकल्प में है तथा हम उसका चुनाव करके कर्म करते हैं। इसी कर्म से ही नीति शास्त्र का सीधा सम्बन्ध है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या आचरण का कोई विज्ञान है ?

विज्ञान का सामान्य अर्थ है—अनुभव के सीमित अंश का विशेष अध्ययन। परन्तु नीति-शास्त्र में हम अनुभव के सम्पूर्ण क्षेत्र को साध्यों या आदर्शों के अनुसरण की दृष्टि से देखते हैं। मैथ्यू आर्नल्ड (matheu arenold) ने कहा है कि 'जीवन का तीन चौथाई भाग आचरण है', किन्तु सोपद्धेश्य कर्म की दृष्टि से पूरा जीवन ही आचरण है। सामान्य रूप से सत्य की खोज (विज्ञान) एवं सौन्दर्य की खोज (ललित कला) के अपने सीमित अर्थों में नैतिक दृष्टि से गर्हित समझा जाता है। किन्तु जब उनको साध्यों या आदर्शों की ओर उन्मुख कर दिया जाता है (जिन्हें कि प्राप्त करना है) तो उनका उन्वेषण भी आचरण बन जाता है। तब सभी अन्य साध्यों की तरह इन आदर्शों का अध्ययन नीति शास्त्र के क्षेत्रक विषय बन जाता है।

वस्तुतः नीतिशास्त्र विज्ञान नहीं है। नीति शास्त्र दर्शन का एक भाग है अर्थात् सम्पूर्ण अनुभव के अध्ययन करने वाले शास्त्र का एक अंश। वह दर्शन का एक अंश ही है क्योंकि वह जीवन के अनुभव का संकल्प ही है तथा वह जीवन के अनुभव का संकल्प या क्रिया शीलता की दृष्टि से विचार करता है। वह मनुष्य को किसी साध्य का अनुसरण कर्त्ता ही मानता है। वह उसे ज्ञाता या भोक्ता के रूप में दूसरे स्तर पर देखता है। परन्तु जब मनुष्य की, साध्यों या आदर्शों की प्राप्ति के प्रयत्न के सम्पूर्ण स्वरूप तथा उसकी सम्पूर्ण क्रियाशीलता का अध्ययन करता है।

उपर्युक्त विवेचन से नीतिशास्त्र को मानवीय शत्रु कह कर इसकी मध्यवर्ती स्थिति निर्देशित हैं। वस्तुतः इन सब जटिलता वाले अन्य विषयों की तरह नीतिशास्त्र की परिभाषा क्षेत्र तथा प्रणाली आदि का निर्धारण आरम्भ के वजाय अन्त में ही सम्भव है। फिर भी उपर्युक्त विवेचन से निम्न तथ्यों को संकलित किया गया है—

१–नीतिशास्त्र उचित अनुचित, अच्छाई बुराई से आच्छादित आच-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रण के मानक का सैद्धान्तिक अध्ययन है।

२–साधारण वास्तविक विज्ञानों (Positievesciencls) में से एक न होकर यह मानकीय है।

३–यद्यपि इसका प्रभाव व्यावहारिक जीवन पर पड़ता है, परन्तु इसे व्यावहारिक विज्ञान नहीं कहा जा सकता।

४–इसे आचरण की कला या कला कहना तो और भी गलत है।

५–इसे आचरण का विज्ञान भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि आचरण के आदर्शों का अध्ययन विज्ञान का नहीं, अपितु दर्शन का विषय है।

■

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मानस के वक्ता और श्रोता

—डॉ० सरोज पालीवाल—

भारतीय षड्दर्शन की विचार-वनस्थली, कर्म, ज्ञान व भक्ति की त्रिवेणी आदर्श व आचार की संहिता, मानवता की मणिमाला, समन्वयता की अविरल सरिता श्री रामचरित मानस अगणित प्राणों का कंठहार है। मानसवेता शिवनन्दन सहाय के शब्दों में "लाखों जन इसे अपना जीवन सर्वस्व समझते हैं। करोड़ों इसका आश्रय ग्रहण कर कुत्सित कर्मोंसे बचते हैं। कितनों के परिवार इसका आदर्श मान छिन्न-भिन्न होने से बच जाते हैं। कितने इसके पाठ से विरक्त साधु बन जाते हैं और कितने पंडित व ज्ञानी........" ऐसा जादू है इस मानस में कि डाक्टर ग्रियर्सन जैसे विदेशी विद्वान् भी इससे चमत्कृत अनुभव करते हैं।

मानस चिन्तन

वस्तुतः रामचरित मानस राम के चरित्र का मानस है। मानस अर्थात् मानसरोवर। यह वह सरोवर है जिसका नीर मर्यादा की सीमा से अनुबन्धित है। श्रीराम ही इसका जल है तभी तो तुलसी गाते हैं—

चली सुभग कविता सरिता सो
राम विमल जल जल भरिता सो।

श्रीराम पर्यन्त राक्षस राज विभीषण सहित सभी पात्र मर्यादारूपी घाटों की महिमा का उद्घोष करते हैं। सुन्दर सात्विकी हृदय-भेदिनी ही इस सरोवर की भूमि है, अन्तर्निहित भाव ही इसकी गहराई है। वेद पुराण समुद्र बनकर इसे परिपूरित करते हैं। साधु-सन्त श्याम घटा बनकर प्यासों पर दया करते हैं। विस्तृत सगुण लीला रामरस रूपी जल की निर्मलता बनकर भौतिक मल का विनाश करती है। अचिन्त्य प्रेमा भक्ति ही इस नीर का विशेष माधुर्य और शैल्य है। लालित्य पद सुमंडित शैली ही इस वांग मानस का सरस तरंग विलास है और सुन्दर चौपाइयाँ हैं। विकसित कमलिनी तथा छन्द, सोरठा, दोहे कमल जिनमें सुललित भाषा अर्थ सहित पुष्प रज, पुष्प रस और पुष्प गन्ध बनकर पात्ररूपी भ्रमर पंक्ति को आकृष्ट कर सुन्दर को सुन्दर करहीं उक्ति

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

को सार्थक हो रहे हैं। अब चारों पुरुषार्थ, नव रस, जप-तप, योग-वैराग्य के प्रसंग जलचर जीव बनकर, सन्त-सभा, आम्र उपवनोंके रूपमें श्रद्धा स्वरूपमें वसन्त इस सरोवर का अभिषेक करती है। यहाँ मन निग्रह ही सन्तरूपी वृक्षों के फूल हैं। ज्ञानफल और श्रीराम चरणारविन्द में अनन्त प्रेम ही इस ज्ञानरूपी फल का वेद विदित रस है। सात काण्ड रूपी सात सोपान इस पुनीत जल के आचमन हेतु निरन्तर निमंत्रण देते हैं। यह जल भी कैसा दिव्य। कैसा चमत्कारी। साधारण जल में केवल शीतलता होती है किन्तु इस जल में सृष्टि के पाँचों तत्त्व निजगुण सार को समन्वित कर धन्य हो उठे हैं अर्थात् पृथ्वी का गन्धत्व, जल का शीतत्व, पावक का पावकत्व गगन का शब्द और वायु का स्पर्श सभी इसमें सन्निहित है तभी तो "जाकी रही भावना" जैसी उक्ति के अनुरूप आचमनकर्त्ता मनोवांछित वस्तु प्राप्त कर लेता है। एक विशिष्ट लक्षण यह है कि यह जल कर्म-अघ है तभी तो मानसकार वचन देते हैं—

दरस परस मज्जन अरु पाना।
हरइ पाप कह वेद पुराना॥

मानस चिंतन द्वारा यह समझ में आता है कि भौतिकी धरातल पर यह सरोवर "राम धामदा पुरी" श्री अयोध्या नगरी में सदा उपस्थित हैं और मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रत्येक प्रेमी मन रामचरित मानस है जहाँ रामकथा का नैरन्तर्य इस कथन को परिपुष्ट करता है—

रामहि सुमरहि गावहि रामहि
सन्तत सुनहि राम गुन ग्रामहि।

आध्यात्मिक भूमिका पर राम नाम रसानुरागी सन्त देश, काल, देह, प्राण, मन और बुद्धि से ऊपर उठकर मानस के मन में डूब मानस-मय हो जाते हैं। यह तुरीय तादात्म्य ही मानस मर्मज्ञोंकी मानस मीमांसा का सार है।

वक्ता और श्रोता

श्री रामचरित मानस रामकथा है। राम नाम की गाथा है। जहाँ कथा है, गाथा है वहाँ वक्ता है और श्रोता है। वक्ता अर्थात् वाणी का आचार्य जो प्रवचन करे। "प्रकर्षेण निगदितम् वचनम्" इति प्रवचनम् अर्थात् भली प्रकार कहा हुआ वाक्य ही प्रवचन कहलाता है। वस्तुतः प्रवचन वही है जो राम नाम से महिमान्वित हो श्रोता को

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निरन्तर सुनाते-सुनाते जीव का जाप बन जाता है और संजोता है मोक्ष-द्वार। श्रोता का अर्थ है श्रवण-यज्ञ का वह पुराहित जो सम्यक्-रूपेण ग्रहणम् इति श्रवणम् का तत्वान्वेषी होता है और तब वह निरन्तर नाम श्रवण मात्र से नाम नामी की अभेद गुहा में प्रवेश कर स्वयम् मानसकार हो जाता है।

बिगड़ी जनम अनेक की सुधरी अब ही आजु।
होइ राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥

श्रीराम नाम मर्मज्ञ मानसकार ने इस चेतावनीपूर्ण दोहे में वक्ता व श्रोता का सूत्रमय सारगर्भित स्वरूप प्रस्तुत किया है। वाणी के सफल आचार्य तुलसी स्वयम् बिगड़े हुए जन्म को सुधारने के लिए कृत-संकल्प हैं। किस प्रकार राम नाम जप द्वारा यह नाम-जप-उच्चारण-कीर्तन ही मानस के संरक्षण की कुंजी है तभी तो तुलसी कहते हैं—

जे गावहिं यह चरित सँवारे।
तेइ यहि ताल चतुर रखवारे॥

सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुरवर मानस अधिकारी॥

सुन्दर संकीर्तनकर्त्ता और प्रेममय श्रोता की ही मानसरूपी मान-सरोवर की धरोहर सौंपी गई है। प्रश्न है ऐसा वक्ता और ऐसा श्रोता कैसे बनें ?

इस पृष्ठभूमि में यह कथन श्रवणीय है।

अलि दौड़े सो कोसतें लेन कमल की बास।
पर दादुर बूझें नहीं रहत कमल के पास॥

कमलानुरागी भ्रमर तो मीलों दौड़कर मकरन्द से लिपट जाता है किन्तु मल में लिपटा हुआ मेंढक मकरन्द के मर्म को रंचमात्र भी नहीं जानता। कैसी विडम्बना है जीवन की। तुलसी ने भी तो कह दिया—

आवत एहि सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई॥

× × × ×

जे श्रद्धा सम्बल रहित नहिं सन्तन्त कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ॥

यहाँ तीन तत्त्व ही वांछित हैं। श्रद्धा, संत-संग और रघुनाथ के प्रति राग। बस, अंतःकरण के सुमन को श्रीराम पादपद्मों में चढ़ा दें तो बेड़ा पार है। तुलसी की अनुभूति है—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह के राम चरन मन भाऊ॥

सत्संग के प्रभाव से, संतों की कृपा से इस मानसरूपी सहस्रधारा में स्नान से बड़भागी जन सत्संग की शाश्वती पर न्यौछावर हो जाता है तभी तो गोस्वामी जी कहते हैं—

जो नहाइ चह यहिं सर भाई। सो सत्संग करउ मन लाई॥

तदनन्तर प्रेम की बाढ़ जीवन को सराबोर कर देती है। माया की आँखमिचौनी, सुख-दुःख की धूप-छाँव, भावों की सर्दी-गर्मी "एकमेव द्वितीयो नास्ति" की सूत्रमयी अनुभूति में सिमट जाती है तब जीवन और मृत्यु के दो तटों के मध्य बहती धारा शाश्वत सुख से भर जाती है। तो तुलसी आश्वासन भरे शब्दों से गाते हैं—

भयउ हृदय आनन्द उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥

इसी अपरिमित आनन्द का प्रतिनिधित्व करते हैं मानस के चार घाटों पर विराजमान चार वक्ता और चार श्रोता भगवान् शिव, ऋषि याज्ञवल्क्य काकभुशुंड और तुलसीदास वक्ता हैं एवं पार्वती, भारद्वाज, गरुड़ और संत समागम क्रमशः श्रोता हैं। यहाँ भगवान् शंकर, ऋषि याज्ञवल्क्य व मानवेतर काग की चर्चा गुप्त रख कलियुगी पर किन्तु कालजयी तुलसी पर ही किंचित कथन अभीष्ट है। जैसा कि विदित है वक्ता के लिए वांछित है वक्तृत्व और श्रोता के लिए श्रवणम्। पर कैसा वक्तृत्व और श्रवणम् ? वक्तृत्व अर्थात् वचन वह जो स्वयं आचरित हो और श्रवण वह जो जीवन में उतर जाय। वक्ता के लिए वांछित है कि उसने जो कुछ जाना हो, वह आचरण में उतर जाय। सीखने का प्रयत्न किए बिना सिखाने की लालसा विफल हो जाती है। तुलसी सिखाने से पूर्व सीखने को तत्पर हैं। पर आज हर दिल सिखाना चाहता है और सीखना भुला देता है। सिखाना मुखर और सीखना उपेक्षित है। सीखना तभी सम्भव है जब अपनी दुर्बलताओं को जानकर अन्तर के महान् अन्तर्यामी की सत्ता को स्वीकार कर लें 'गुहानिहितं गह्वरेष्ठ' के अस्तित्व को जानने के लिए अभीप्सित रहें। इस दिशा में चलने वाले अल्प हैं तभी आज मार्मिक मानस वक्ताओं का अभाव है। गोस्वामी जी ने भी इस आचरण पक्ष के विषय में कहा है—

पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

स्मरणीय है कि आचरण विहीन जो नर धर्म का परिपंथी बन जाता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। मनु के शब्दो में "विद्वद्‌भिः सेवितम् धर्मं" विद्वानों के द्वारा किया जाने वाला आचरण ही धर्म है।

भारतीय संस्कृति, सनातनधर्म के अनुसार जो सब कुछ सीखने योग्य है, उसे सीख वक्ता जब इस उपनिषदीय वाणी "मृतिका इत्येव सत्यम्" अथवा "ब्रह्म सत्यम् जवात् मिथ्या" को अनुभवगम्य कर लेता है, जब वह इस चौपाई—

उमा कहहुँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सब सपना।

के मर्म को हृदयंगम कर लेता है, जब वह जड़ को चेतन करनेवाले राम में रम जाता है, तो वक्ता शारीरिक शोक को सुखा, मानसिक मल को मिटा प्राणिक पीड़ा को गला उस चेतना में प्रविष्ट हो प्रवचन करता है जहाँ वक्ता का वचन श्रोता की अनुभूति बन जाती है और तब सकल जहान में रमा राम वातावरण में मुखरित हो उठता है।

इस प्रकार अच्छा श्रोता ही अच्छा वक्ता बनता है क्योंकि "सम्यक् श्रवणम् सम्यक् वचनम्" का सोपान है अर्थात् वक्तृत्व श्रोता की संसिद्धि है। वह श्रवण गुरु द्वारा हो या स्वयम् अन्तःकरण द्वारा—यह अलग प्रश्न है। गुण व तत्त्व दोनों के समान है और वह गुण व तत्त्व है राम-रसरूपी राग जिसके शतधार स्रोत में सतत् स्नात तुलसी जैसा वक्ता संतों जैसा श्रोता के सम्मुख अनंत काल तक गाता रहेगा—

मंगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की ज्यौं सरित पावन पाथ की॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंग भूत मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बौद्ध दर्शन में प्रमाण विचार : समीक्षात्मक दृष्टिकोण

—श्री हरिओम् सिंह—

जब सत्य की परीक्षा केवल अनुभव से होती है, तब यह प्रश्न स्वभावतः उठता है कि ज्ञान के जो कारण हैं, वह उसके सम्यक् होने के भी कारण हैं, अथवा ज्ञान का कारण एक है और उसकी सत्यता को प्रमाणित करने के लिये चित्त को दूसरी क्रिया करनी होती है ?

इस प्रश्न पर भी मीमांसकों ने विचार किया है, क्योंकि उनको वेद-प्रामाण्य प्रतिष्ठित करना था। मीमांसकों के अनुसार ज्ञान स्वतः सम्यग्-ज्ञान है, प्रामाण्य-युक्त है, क्योंकि यह ज्ञान है, विसंवादक नहीं है। दो ही अवस्थाओं में ज्ञान अपवाद के रूप में मिथ्या होता है—(१) जब उसका बाधक ज्ञान है, या (२) जब कारण-दोष है। सिद्धान्त स्वतः प्रामाण्य का है, दोष परतः सिद्ध होता है।

बौद्धों के अनुसार स्वतः प्रामाण्य है, परतः प्रामाण्य है,क्योंकि प्रापक ज्ञान प्रमाण है। बौद्धों के अनुसार व्यभिचार सम्भव है। कारण-गुण के ज्ञान से संवाद ज्ञान से, अर्थक्रिया ज्ञान से हम कह सकते हैं कि यह अविसंवादक ज्ञान है।

बौद्ध क्रिया और ज्ञान से साम्य के आधार पर रचित इस प्रणाली का प्रत्याख्यान करते हैं, क्योंकि वह प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त मानते हैं। इन्द्रिय है, इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष है, इन्द्रिय-विज्ञान है। आत्मा नहीं है, इन्द्रिय का उपकरणत्व नहीं है, अर्थग्रहण नहीं हैं। विज्ञान और विकल्प में सारूप्य है। वही प्रमाण है, वही प्रमाण-फल है। अर्थ का आकार के साथ सारूप्य और आकार दो भिन्न वस्तु नहीं है।

दिङ्नाग के अनुसार ज्ञान के केवल दो ही साधन हैं, प्रत्यक्ष और अनुमान।[1] विज्ञप्तिमात्रा या स्वलक्षण प्रत्यक्ष का विषय है और सामान्य लक्षण या वस्तुएँ अनुमान का।[2]

---

१. प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणं हि द्विलक्षणम्।
प्रमेयं तत्प्रयोगार्थं न प्रमाणान्तरं भवेत्॥ —प्रमाणसमुच्चय, १।२

२. दिङ्नाग से पूर्व ज्ञान के क्षेत्र में प्रमाण-संप्लव का सिद्धान्त प्रचलित था जिसके अनुसार एक ही वस्तु का ज्ञान प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा अन्य प्रमाणों द्वारा भी हो सकता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रत्यक्ष

प्रो० ह्रिरियन्ना के शब्दों में "बौद्ध-धर्म प्रत्यक्षवादी है। बुद्ध के समय से ठीक पहले दार्शनिक चिन्तन लगभग निरंकुश हो गया था और सैद्धान्तिक प्रश्नों के बारे में अत्यधिक वादविवाद विचारों को अराजकता की ओर लिये जा रहा था। बुद्ध के उपदेश में इसकी प्रतिक्रिया प्रकट हुई ? और उसमें हमें जीवन के ठोस तथ्यों की ओर वापस जाने का निरन्तर प्रयास दिखाई देता है। अपने समय के परम्परागत विश्वास के अनुसार बुद्ध ने अपने प्रवचनों में बार-बार हमारे इस लोक से भिन्न लोकों और उनमें निवास करनेवाले प्राणियों की ओर इशारा किया है। यह अंशतः लौकिक भाषा के प्रयोगों को अपनाने का एक रूप था और इससे बचना अपने समय की भाषा का सहारा लेनेवाले किसी भी व्यक्ति के लिये असम्भव हुआ होता। इसका कारण अंशतः यह भी था कि बुद्ध कर्म-सिद्धान्त में विश्वास करते थे, जिसमें परलोक की बात निश्चित रूप से शामिल है। फिर भी उनके उपदेश को सार-रूप में हर ऐसी चीज बहिष्कार करनेवाला कहा जा सकता है जो प्रत्यक्षतः ज्ञात न हो। वेद के प्रामाण्य को, विशेष रूप से यज्ञों के बारे में, उन्होंने बिलकुल नहीं माना। कुछ आधुनिक विद्वानों के अनुसार अलौकिक में विश्वास बुद्ध के उपदेश का अभिन्न अंग था, क्योंकि उसका उस युग की मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों से ऊपर उठना सम्भव नहीं था। लेकिन उसकी सामान्य प्रवृत्ति से, विशेष रूप से यह देखते हुए कि प्रत्यक्षवादी सिद्धान्त भी उस काल में अज्ञात नहीं थे, यह धारणा बनती है कि बुद्ध प्रत्यक्ष और तर्क के दायरे के बाहर की किसी चीज को स्वीकार नहीं करते थे। इस धारणा का समर्थन इस बात से होता है, जैसा कि हम बाद में देखेंगे कि बाद के काल में बौद्ध-धर्म का विकास प्रधानतः तर्कनावादी दिशाओं में हुआ।"

दिङ्नाग के अनुसार प्रत्यक्ष निर्विकल्प है और नाम, जाति, द्रव्य गुण तथा क्रिया आदि बुद्धि-विकल्पों से असंपृक्त है।[3]। उनके अनुसार यह ज्ञान की वह अवस्था है जहाँ वस्तु इन्द्रियगोचर तो होती है, किन्तु वह क्या है, इस बात का ज्ञान होने के पूर्व दृष्टि से ओझल हो जाती है। अतः उसके कार्य से हम यह अनुमान लगाते हैं कि दृष्ट वस्तु क्या थी। चूँकि प्रत्यक्ष ऐसी अवस्था है जहाँ नाम, जाति, द्रव्य, गुण और

३. प्रत्यक्षं कल्पनापोढ़ं नामजात्याद्यसंयुतम्। —प्रमाणसमुच्चय, १-३

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्रिया आदि कोटियाँ, जिनके द्वारा हम किसी वस्तु के विषय में ज्ञान प्राप्त करते हैं, का अस्तित्व ही नहीं, अतः प्रत्यक्ष के विषय स्वलक्षण के सम्बन्ध में हम विध्यात्मक रूप से कुछ भी नहीं कह सकते। हम जो कुछ भी वर्णन करते हैं वह सामान्य लक्षण है अर्थात् स्वलक्षण का वह रूप जिसे हमने बुद्धि की कोटियों में आबद्ध कर लिया है। दिङ्नाग का प्रत्यक्ष नैयायिकों के प्रत्यक्ष से भिन्न है। नैयायिकों के अनुसार प्रत्यक्ष निर्विकल्प (अव्यपदेश्यम्) के साथ अव्यभिचारी और व्यवसायात्मक भी भी है।[1] दिङ्नाग का कथन है कि चूँकि प्रत्यक्ष बुद्धि-विकल्पों के उद्भव के पूर्व की अवस्था है, अतः उसे हम अव्यभिचारी और व्यवसायात्मक आदि बुद्धि-कल्पित विशेषणों से कैसे युक्त कर सकते हैं।

अनुमान

वात्स्यायन के अनुसार किसी हेतु या लिग के पूर्वज्ञान के आधार पर किसी विषय के ज्ञान को अनुमान कहते हैं।

दिङ्नाग ने इस परिभाषा में संशोधन किया और कहा कि हेतु या लिंग त्रैरूप्ययुक्त[2] होना चाहिए। अर्थात् उसे पक्ष में होना चाहिए, समक्ष (पक्ष के सदृश) वस्तु में होना चाहिए किन्तु विपक्ष में कदापि न होना चाहिए। उदाहरण के लिए अग्नि के साध्य होने पर पर्वत पक्ष है, रसोईघर सपक्ष है और जलाशय विपक्ष है। किन्तु दिङ्नाग यहीं नहीं रुके। उनके अनुसार वैध हेतु के लिए न केवल त्रैरुप्य आवश्यक है प्रत्युत हेतु और साध्य के बीच अविनाभाव का सम्बन्ध भी आवश्यक है। इसके अभाव में हेतु के त्रैरुप्ययुक्त होने पर भी अनुमान की सभी घटनाओं की व्याख्या नहीं हो सकेगी।

अनुमान दो प्रकार का है—परार्थानुमान और स्वार्थानुमान।[3] परा-

---

१. इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानम्, अव्यपदेश्यम्, अव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्। —न्याय सूत्र १।१।४

२. दिङ्नाग के प्रत्यक्ष का सम्प्रत्यय वस्तुवादी दार्शनिकों के निर्विकल्प प्रत्यक्ष से मिलता जुलता है—

अस्तिह्यालोचनं ज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पम्।
बालमूकादि विज्ञानसदृशं शुद्ध वस्तु जम्॥

—श्लोकवार्तिक सूत्र, ४।११२

३. मितेनलिंगेन लिंगिनोर्थस्य पश्चान्मानम् अनुमानम्। —न्यायभाष्य, १।१।१३

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

र्थानुमान शब्दात्मक है (सिला जिल्म), स्वार्थानुमान ज्ञानात्मक है। दोनों में अत्यन्त भेद होने से इसका लक्षण एक नहीं है। परार्थानुमान वह है, जिससे दूसरे को ज्ञान प्रतिपादित कराते हैं। स्वार्थानुमान अपनी प्रतिपत्ति के लिए है। पहले हम स्वार्थानुमान का लक्षण वर्णित करेंगे। जो ज्ञान त्रिरूप लिंग से उत्पन्न होता है और जिसका आलम्बन अनुमेय है, वह स्वार्थानुमान है। अनुमान में भी प्रत्यक्ष के तुल्य प्रमाणफल की व्यवस्था है। यथाः नीलसरूप प्रत्यक्ष का अनुभव होने पर नीलबोधरूप अवस्थापित होता है। यही नीलसरूप जो अवस्थापन का हेतु है, प्रमाण है और नीलबोधरूप प्रमाणफल है। इसी प्रकार, अनुमान के नीलाकर उत्पन्न होने पर नीलबोधरूप अवस्थापित होता है। नीलसारूप्य इसका प्रमाण है और नीलविकल्पन रूप इसका प्रमाणफल है। सारूप्यवश ही नील प्रतीतिरूप सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं।

परार्थानुमान

परार्थानुमान वह है, जिससे दूसरे को ज्ञान प्रतिपादित कराते हैं। यह त्रिरूप लिंग का प्रकाशन है। यहाँ भी लिंग या हेतु या साधन के तीन रूप हैं। यह इस प्रकार है—

१. अन्वय—यथाः 'जहाँ धूम है, वहाँ वह्नि है' अथवा जो जात है, वह अनित्य है।

२. व्यतिरेक—यथाः 'जहाँ वह्नि नहीं है, वहाँ धूम भी नहीं है।

३. पक्षधर्मत्व—यथाः 'यहाँ वही धूम है, जिसका वह्नि के साथ अविनाभाव है।'

परार्थानुमान शब्दात्मक है। वचन द्वारा त्रिरूप लिंग का आख्यान होता है। अनुमान को हमने पहले सम्यग् ज्ञानात्मक बताया है। इसका क्या कारण है कि अब हम उसे वचनात्मक कहते हैं।

(क्रमशः)

■

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सत्य

—प्रोफेसर शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी—

अ–सत्य

शब्दोत्पत्ति की दृष्टि से सत्यकी व्याख्या और दार्शनिक दृष्टि से उसके महत्व की चर्चा करते हुए गाँधी जी ने लिखा है कि 'सत्य' सत् से बना है। 'सत्' का अर्थ है अस्ति—अर्थात् अस्तित्व। सत्य के साथ ज्ञान शुद्ध ज्ञान अवश्यंभावी है। जहाँ सत्य नहीं है वहाँ शुद्ध ज्ञान की सम्भावना नहीं है। इससे ईश्वर नाम के साथ चित अर्थात् ज्ञान शब्द की योजना हुई है और जहाँ सत्य ज्ञान है, वहां आनन्द ही होगा, शोक होगा ही नहीं। सत्य के शाश्वत होने के कारण आनन्द भी शाश्वत होता है। इसी कारण ईश्वर को हम सच्चिदानन्द के नाम से भी पहचानते हैं।"[१] स्पष्ट है कि गाँधी जी की दृष्टि में सत्य समस्त नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का आधार है।

इसके अतिरिक्त गाँधी जी ने मनुष्य मात्र को कष्ट सहकर भी सत्य पालन का उपदेश दिया है और स्वयं इस व्रत का पालन किया है।

दार्शनिक दृष्टि से सत्य को निरपेक्ष और नैतिक दृष्टि से सापेक्ष मानने वाले गाँधी जी कहते हैं जिसे मनुष्य निःस्वार्थ होकर वास्तव में अन्तःकरण से सत्य समझता है उसका आचरण करना चाहिए। मात्र वाणी नहीं, मन व कर्म से भी गाँधी सत्य का आचरण अनिवार्य मानते हैं।

सत्य के महत्व पर जोर देते हुए गाँधी जी लिखते है—"मैं अहिंसा का उतना समर्थक नहीं हूँ जितना सत्य का, मैं सत्य को पहला और अहिंसाको दूसरा स्थान देता हूँ।....मैं सत्य के लिए अहिंसा का परित्याग कर सकता हूँ। वस्तुतः सत्य अन्वेषण करते हुए ही मैंने अहिंसा की खोज की।[२]

गाँधी के अनुसार सत्य ईश्वर है—परम तत्व है। साथ ही वह परम मूल्य, निःश्रेयस भी है अतः वही वरेण्य है। उसका साक्षात्कार परम

---

१. महात्मा गाँधीः धर्म नीति पृ० ११७-११८।

२. महात्मा गाँधीः हरिजन पृ० ४९ दि० २८-३-१९३६।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मंगलमय है। प्रकृति के नियमों में ही सत्य का प्रकाश होता है सब सद्-गुण सत्य के और सब अवगुण असत्य के रूप हैं। सत्य परायणता, न्याय-वर्तिता, आत्म संयम, आडम्बर हीनता, क्षमा, नम्रता सहिष्णुता, अन-सूया, दाक्षिण्य, परोपकार, आत्मज-दया और अहिंसा—ये तेरहों सत्य के रूप हैं।

सत्य सनातन ब्रह्म है....सब कुछ सत्य में प्रतिष्ठित हैं। उपर्युक्त विवेचन में सत्य का तीन अर्थ है। जब गाँधी की व्युत्पत्ति संस्कृत के सत् से करते हैं तब इसका अर्थ निरपेक्ष सत्ता से लेते हैं। दूसरा ईश्वर रूप में तीसरा नैतिक मूल्य के रूप में। यह 'सत्य' का गाँधी जी द्वारा अखण्ड रूप में लिया जाना है। जीवन की मूलभूत समस्याओं के चिंतक होने के कारण वे तात्विक धारणा को ज्ञान एवं नीति के आदर्श मूल्यों से वंचित नहीं रख सकते थे।

ब– सत्य–अहिंसा

गाँधी जी ने कहा था कि 'सत्य और अहिंसा पर्वतों के समान प्राचीन है। मैंने केवल यही किया है कि मैंने जीवन और इसकी समस्याओं पर लागू किया है।'

प्रश्न है कि सत्य-अहिंसा में क्या पारस्परिक सम्बन्ध हैं। "अहिंसा और सत्य एक दूसरे से इतने गुथे हुए हैं कि इन्हें अलग कर पाना लग-भग असम्भव है। ये एक ही सिक्के के दो पहलु हैं, जिन पर कुछ भी नहीं लिखा है। फिर कोई कैसे कह सकता है कि कौन सा पहलु उलटा है और कौन सा सीधा ? मगर दोनों में इतना अन्तर जरूर है कि अहिंसा साधन है, सत्य साध्य है। साधन तो वही है जो हमारी पहुँच के अन्दर हो, और इसलिए अहिंसा हमारा परम कर्तव्य है। अगर हम साधन का ध्यान रखते हैं तो देर-सवेर साध्य को प्राप्त कर लेना निश्चित है। एक बार इस बात को मन में बिठा लेने के बाद अन्त में हमारी विजय निश्चित है। हमारे मार्ग में चाहे जितनी बाधाएँ आएँ, ऊपर से देखने में चाहे जितनी विफलताएँ मिलें हमें सत्य की खोज नहीं छोड़नी चाहिए— सत्य जिसके अतिरिक्त और किसी का अस्तितत्र नहीं, क्योंकि वास्तव में सत्य ईश्वर है।....मैं स्वभाव से ही सत्य परायण रहा हूँ, किन्तु अहिंसा की वृत्ति मुझमें स्वभाव से विद्यमान नहीं थी। एक जैन मुनि ने एक बार मेरे सम्बन्ध में ठीक ही कहा था कि मैं अहिंसा का इतना बड़ा पुजारी नहीं हूँ जितना कि सत्य का हूँ। मैं सत्य को प्रथम स्थान देता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हूँ और अहिंसा को उसके बाद का। कारण जैसा कि उन्होंने कहा था, मैं सत्य की खातिर अहिंसा का बलिदान कर सकता हूँ। सच तो यह है कि सत्य की खोज के क्रम में ही मैंने अहिंसा को पाया है।[१]"

श्री आर० आर० दिवाकर ने कहा है कि "गाँधी के लिए सत्य और अहिंसा का सम्बन्ध सूत्र तथा उनके जीवन और अनुशासन को प्रेरित करने वाला मौलिक दृष्टिकोण इस वाक्य में निहित है कि 'अहिंसा ही सत्य की उपलब्धि का एक मात्र माध्यम है'। अपने इस एकान्तिक दृष्टिकोण के कारण ही गाँधी का स्थान सत्य के अन्य साधकों में निराला है।"[२]

सावली के सम्मेलन में इस प्रश्न की "आपका मुख्य धर्म सत्य या अहिंसा है ?" के अन्तर में गाँधी जी ने कहा था "सत्य की खोज मेरे जीवन की प्रधान प्रवृत्ति रही है, इसमें मुझे अहिंसा मिली और मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि इन दोनों में अभेद है वगैर अहिंसा के मनुष्य सत्य तक नहीं पहुँच सकता। यह मेरे जीवन का अनुभव है। मेरी साधना का निचोड़ है। इसलिए इन दोनों की जुगल जोड़ी को मैं अभेद मानता हूँ। सत्य और अहिंसा मेरे लिए जुगल जोड़ी हैं। यह अर्धनारीश्वर नहीं है। सत्य और अहिंसा एक दूसरे में ऐसे घुले-मिले हैं कि इनका अलग-अलग करना मुश्किल है।"[3]

सत्य और असत्य के विषय में प्राच्यशास्त्रों, महाकाव्यों धार्मिक ग्रन्थों तथा नीति सम्बन्धी अन्य ग्रन्थों में विस्तृत विवेचन है। अश्वमेध पर्व में श्री कृष्ण ने कहा है" सत्य और धर्म का मुझमें नित्य निवास है।" कठोपनिषद् सत्यान्वेषण के वृद्धि एवं तर्क को असमर्थ तथा निष्ठा को सक्षम बताता है। गीता के बोध से गाँधी को यह मत मिला था कि तात्विक दृष्टि से ईश्वर एक मात्र सत् है। यही ईश्वर सब धर्मों का ईश्वर है।" पर चूँकि ईश्वर की कल्पना विभिन्न है और सत्य की कल्पना एक है, इसलिए गाँधी ने 'ईश्वर सत्य है' यह न कहकर 'सत्य ईश्वर है' यह कहा करते थे। इसी सत्य को पाना, मनुष्य के सभी ऐच्छिक कार्यों का साध्य है।"[४]

---

१. संकलन एवं सम्पादन यू० एस० मोहनराव: महात्मा गाँधी का सन्देश, पृ० २६-३७।

२. सम्पादक, एस० राधा कृष्णन्: महात्मा गाँधी। १०० वर्ष पृ०, ८२।

३. दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृ० १९५।

४. संगम लाल पाण्डेय : नीति शास्त्र का सर्वेक्षण पृ० ३६७।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स–सत्याग्रह

गाँधी ने सत्य को मूल अर्थ में लिया है। सत्य आत्मा है, ईश्वर है। अतः अन्तरात्मा के अनुसार जो सही हो उसका मनसा वाचा एवं कर्मणा आचरण ही सत्य आचरण है। यही सत्याग्रह है।

गाँधीवाद में सत्याग्रह को समाज परिवर्तन की पद्धति या शस्त्र के रूप में किया गया है।" सत्याग्रह की पद्धति से व्यक्ति और समाज की सभी प्रकार को अन्तर्निहित बुराइयाँ तथा संघर्षों का प्रतिकार अहिंसक तरीके से किया जा सकता है और उनकी स्थिति सुधारी जा सकती है। सम्पूर्ण मानव इतिहास में गाँधी को छोड़कर किसी दूसरे ने इसका प्रयोग इतने व्यापक क्षेत्र (आर्थिक सामाजिक राजनैतिक) में नहीं किया था।[१]

सत्याग्रह का अर्थ बताने के समय उसकी पृष्ठ भूमि की चर्चा जरूरी है। गाँधी जी ने सरकारी अनौचित्य के प्रति नये ढंग के सामूहिक, पर व्यक्तिगत विरोध के लिए एक सुन्दर नाम सुझाने के हेतु पुरस्कार की घोषणा की। मगन लाल गाँधी ने 'सदाग्रह' (सद + आग्रह) सुझाया। गाँधी जी ने उसमें थोड़ा संशोधन किया और उसे 'सत्याग्रह' (सत्य + आग्रह) का नाम दे दिया। तब से यह नाम चल पड़ा। अन्ततः स्वराज्य की प्राप्ति में सत्याग्रह को महत्वपूर्ण भूमिका रही।

सत्याग्रह का सामाजिक अर्थ है, सत्य का आग्रह। परन्तु सत्य के अलग-अलग अर्थ लिए जाते हैं, इसलिए सत्याग्रह के अर्थ में भी मतों का वैविध्य है। जयत नुजा बद्योपाध्याय ने गाँधी के सत्य को तथ्य और और मूल्य दो अर्थों में लिया है।[२] यानी सत्याग्रह का अर्थ हुआ न्याय का आग्रह ! गाँधी ने सत्याग्रह की सत्यशक्ति[3] के रूप में स्वीकार किया है। स्वयं गाँधी कहते है" सत्याग्रह का सार है राजनीतिक अर्थात् राष्ट्रीय जीवन में सत्य और विनय का प्रयोग।....सत्याग्रह का प्रयोग करते हुए मैंने विल्कुल शुरू में पाया कि सत्य की खोज, विरोधी के प्रति हिंसात्मक व्यवहार की अनुमति नहीं देती। विरोधी को धैर्य और सहानुभूति से गलत रास्ते से हटाना चाहिए। क्योंकि जो चीज किसी एक को सत्य प्रतीत होती है वही दूसरे को गलत भी लग सकती है। और धैर्य का

---

१. एन० के० बोस : स्टडीज इन गाँधीज्म, पृ०, १२६।

२. जे० वन्द्योपाध्याय : सोशल एन्ड पोलिटिकल थाट आफ गाँधी, पृ० २०-२१।

३. गाँधी सत्याग्रह, पृ० ३।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मतलब है स्वेच्छया से कष्ट सहन करना। इस प्रकार इस सिद्धान्त का मतलब यह निकला कि विरोधी का कष्ट पहुंचाकर नहीं बल्कि स्वयं कष्ट सहकर प्रतिष्ठित करना।"[१]

नैश के अनुसार सत्याग्रह बिना किसी खास घटना का उल्लेख किए सामूहिक संघर्ष प्रक्रिया का सामान्य नाम है।[२]

बिनोवा के अनुसार सत्याग्रह का अर्थ है 'सत्य के लिए अहिंसापूर्वक आग्रह' आगे वे कहते हैं "यदि मुझे सत्य का आग्रह है तो मैं अपना सत्य दूसरों पर लाद नहीं सकता और दूसरे भी अपना सत्य मुझ पर लाद नहीं सकते। हम एक दूसरे को समझा सकते हैं, मत परिरर्तन की कोशिश कर सकते हैं। वह हुआ तो हम बदलेगें, नहीं तो अपने मत पर डटे रह सकते हैं।....आगे उनका कहना है कि वे संख्या में समस्त संसार में एक ही क्यों न हों, उनका सारी दुनिया पर असर होगा....लेकिन उसके हृदय में दुनिया के लिए प्रेम होना चाहिए।

विनोवा की दृष्टि में सत्याग्रह में विचार-निष्ठा, सत्य शोधन, निर्वैरता तीन आवश्यक अंग है। इसलिए बिनोवा कहते हैं—" मूलतः सत्य-शोधक वृत्ति ही सत्याग्रह का बीज है, विचार-निष्ठा सत्याग्रह की शक्ति है और निर्वैरता है सत्याग्रह का खूँटा।"[३]

डॉ० राममनोहर लोहिया सत्याग्रह का अर्थ सत्य के आग्रह से है। उनके अनुसार वह सत्य-सत्य नहीं है जिसमें यह ताकत नहीं है कि वह अपने प्रभुत्व को जमा सके। उनके शब्दों में—"क्या फायदा कि अगर हम अपने कमरे में बैठे खुश हो लें कि हमने तो सब कह दिया, या लिख दिया, अगर उसके खिलाफ सारी कार्यवाही होती रहती है। इसलिए ताकतवर सच को ही सच कहा जाता है। यह सही है कि ताकतवर बनने के लिए सम्भव है काफी अरसे की मिहनत हो, तकलीफ उठाएँ और तपस्या करनी पड़े।"[४]

डॉ० दशरथ सिंह कहते है, "जहाँ बिनोवा की व्याख्या में सत्याग्रह की आध्यात्मिक शक्ति को प्रकट करने का विशेष प्रयास है वहीं डॉ० लोहिया की व्याख्या में अन्याय के विरुद्ध जनशक्ति का आवाहन है।

१. यू० एस० मोहन राव (संकलन और सम्पादन) महात्मा गाँधी का सन्देश, पृ०, ३३।

२. गाँधी एण्ड दी न्यूक्लियर एज, पृ० ६३-६४।

३. उपरिवत् पृ० ६३।

४. उपरिवत् पृ० ११।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परन्तु दोनों की व्याख्या वस्तुतः अपूर्ण मानी जायगी। सत्याग्रह में अन्याय का प्रतिकार और रचनात्मक कार्य दोनों सन्तुलित ढंग से चलना चाहिए। परन्तु यह सत्य है कि कोई भी विचार विचारक के व्यक्तित्व और मनोवृत्ति के प्रभाव से अछूता नहीं रहता है। बिनोवा की व्याख्या उनकी संन्यासवादी दृष्टि का परिणाम है। विनोवा की व्याख्या सैद्धान्तिक हैं। राममनोहर लोहिया की व्याख्या वस्तुवादी है। यदि दोनों की व्याख्या का अविरोधी समन्वय हो तो सचनुच गाँधी का विचार पूर्ण माना जायगा।"[1]

द–आलोचन

महाभारत में सत्याचरण का वर्णन है। वास्तव में सत्य से बढ़कर कोई धर्म है ही नहीं, नास्ति सत्यात्परो धर्मः।[2] उपनिषदों में भी सत्य बोलने और सत्य धर्म पालन करने का उपदेश दिया गया है 'सत्यंवद्, धर्मचर[3] मनु महाराज का उपदेश है' सत्यपूता वदेदाच[4]

निर्मल हृदय सत्य स्वरूप हो जाता है गाँधी जो के मत से निर्मल अन्तःकरण को जिस समय जो प्रतीत हो, वह सत्य है। उस पर दृढ़ रहने से शुद्ध सत्य की प्राप्ति हो जाती है।[5] गाँधी का यह कथन कालिदास के इस वचन के समान ही हैं सतांहि सेदेह पदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करण प्रवृत्तयः (सत्य पुरुष अपने अन्तःकरण ही की गवाही को प्रमाण मानते हैं।

गाँधी जी का सत्य तत्त्व केवल धर्म का अंग मात्र नहीं है, वरन यह मानव सेवा के हेतु सद् कर्तव्य भी है। वह सबके प्रति प्रेम का दर्शन है। वह मधुरतम मिठास से परिपूर्ण है।[6]

इसके अलावा सामाजिक मूल्य के रूप में जब सत्य की हम उपासना करते है, तो ध्रुव सत्य हमारे लिए यह है कि दूसरे व्यक्ति और मैं एक हूँ। इसकी वैज्ञानिक व्याख्या है जीवन की एकत्र और ईश्वरनिष्ठ परि-

---

१. डॉ० दशरथ सिंह : गाँधीवाद को बिनोवा की देन पृ० ५५५।
२. महाभारत शा० १६२, २४।
३. तैत्तिरियोपनिषद १।११।१।
४. मनुस्मृति ६, ४६।
५. गाँधी : सत्य ही ईश्वर है—पृ० १९।
६. डॉ० रामजी लाल सहायकः महात्मा कबीर ओर महात्मा गाँधी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन पृ० १०७।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भाषा में 'ईशावास्यमिद सर्वम' आध्यात्मिक परिभाषा में 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। दादा धर्माधिकारी कहते हैं इनका सामाजिक संकेत हमारे जीवन में सारे जीवन की एकताके रूप में है। पशु से लेकर मनुष्य तक जितना कुछ जीवन है, इस जीवन मात्र की एकता जीवन का ध्रुव सत्य है।

गाँधी जी सत्य को पहचानने उसका साक्षात् व उसे जीवन में प्राप्त करने के लिए अधिक व्यग्र थे। वह विश्व में सत्य का शासन, सत्ता और उसकी संभावना के विधान का शासन स्थापित करना चाहते थे। इसी लिए अपने प्रत्यक्ष ज्ञान, पर्यवेक्षण और चिन्तन द्वारा दैनिक जीवन में सत्य का अनुभव उनकी सत्त साधना का लक्ष्य बन गया था इसीलिए गाँधी जी उत्पीड़ित मानवता के हितार्थ व्यग्र हो उठते थे।

प्रश्न है कि बिना अपवाद के क्या सत्य का दृढ़तापूर्वक पालन वांछनीय है ? कांट का मत है कि सत्य और अन्य नैतिक नियम अपने आप में शुभ है। इसके विपरीत वैंथेम, मिल, सिजविक आदि कुछ नीतिशास्त्रियों का विचार है कि समस्त नैतिक नियम अपने आप में शुभ व स्वतः साध्य न होकर मूलतः सामाजिक कल्याण के साधन है। मैं समझता हूँ यद्यपि सत्य अपवाद रहित नैतिक नियम नहीं है, तथापि दुर्भावनाग्रस्त हो इसका उलंघन वांछनीय नहीं।

किन्तु गाँधी की दृष्टि में सत्य सर्वोदय का आधार है। उनका कहना है कुछ लोग कहते हैं कि इस सत्य निष्ठा से सर्वोदय समाज में अधिक लोग नहीं आएँगे।—मान लीजिए सर्वोदय समाज हवा में ही रह गया, तब भी यह अव्यक्त कल्पना विश्व कल्याण करेगी। इसके विपरीत सत्य निष्ठा विहीनों की बहुत बड़ी संख्या किसी समाज में शामिल हुई तो भी विश्व कल्याण तनिक भी नहीं होगा।

एक जटिल समस्या यह है कि सत्य का पालन बहुत पुराना उपदेश है फिर भी उसके न पालन होने का क्या कारण है ?

मैं यशपाल के मत से सहमत हूँ कि सृष्टि के अन्य जीवों की तरह मनुष्य भी जीवित रहने का प्रयास करते हैं। जीवित रह सकने का उपाय भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करना असत्य है तो सभी जीवों का जीवन असत्य है। यानी जब तक भौतिक आवश्यकताएँ पूरी नहीं होंगी तब तक सभी जीवों का जीवन असत्य होगा।

सत्य क्या है, के उत्तर में गाँधी जी ने कहा था "मेरा भगवान् सत्य है। सत्य ही भगवान् है।" तथापि आइन्सटाइन का गाँधी जी के बिषय में लिखा यह मत समीचीन है कि "जहाँ तक हम लोग कोई नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पहुँच सकते थे, वहाँ तक इसकी पहुँच थी। इसलिए हम कहते है कि दुनिया में इस धरती पर ऐसा आदमी इससे पहले कभी नहीं चला था। गिरजाघरों में, मसजिदों में मन्दिरों में और गुरुद्वारों में जो भगवान रहते हैं उन भगवान् में मेरी निष्ठा नहीं, मेरा विश्वास नहीं, मेरी श्रद्धा नहीं, लेकिन उस गाँधी ने जिस सत्य और जिस भगवान् की उपासना की। वह वैज्ञानिक है। उसमें मेरी श्रद्धा भी है और निष्ठा भी है॥''[१]

■

१. दादा धर्माधिकारी: सर्वोदय दर्शन पृ० १९४।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अमर शहीद सन्त सरमद

—श्री जयनाथ कौल—

कई वर्षों की बात है कि एक बार श्रद्धेय श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार के सम्पर्क में रहनेवाले एक सन्त देहली में जामा मस्जिद के सामने से ज्यों ही जाने लगे, अचानक उनकी वृत्ति अन्तर्मुखी हो गई। संत महानुभाव ने पता लगाया कि मस्जिद के आस-पास किसी संत का कोई स्मारक तो नहीं है? पूछ-ताछ करने पर उन्हें पता लगा कि जामा मस्जिद के प्रांगण में ही फकीर सरमद की समाधि है। संत के चित्त में सरमद के सम्बन्ध में विशेष जानकारी करने की जिज्ञासा हुई और उन्होंने अपने भक्त से यह अनुरोध किया कि सरमद पर जो भी सामग्री उपलब्ध हो उसको पुस्तकाकार रूप देकर साधकों के लाभार्थ प्रसारित किया जाय। तभी से मुमुक्षुओं के समुदाय में सरमद के प्रति आस्था उत्तरोत्तर बढ़ने लगी।

संत सरमद का जन्म मुल्क ईरान के एक धनी परिवार में लगभग ४०० वर्ष पूर्व हुआ जिस जमाने में अकबर बादशाह का भारत में राज्य था। आपकी शिक्षा अरबी, फारसी भाषाओं में बड़े ऊँचे दरजे की हुई। धार्मिक ग्रंथों को पढ़कर उनका सार निकाल कर जीवन में घटाने का शौक आपको छोटी आयु से ही था। इसलिये आपने यहूदी-धर्म की पुस्तकें और ईसाइयों की बाइबिल बड़े चाव से पढ़ी। इसके बाद आपने इस्लामी शिक्षा प्राप्त की और वातावरण के अनुसार मुसलमान संतों के जीवन से प्रभावित होकर उनके धर्म को स्वीकार कर लिया।

आप १६११ ई० में भारत में पहली बार पधारे और कराची में उतरे। आप एक सच्चे ईश्वर भक्त और बहुत उच्च कोटि के साधक थे, इसलिए पुण्य भूमि में आकर यहीं के हो गए।

फारसी भाषा के बहुत बड़े विद्वान् होने के नाते और भावपूर्ण सूफी विचारों से भरी सुप्रसिद्ध कविताओं के रचयिता होने के कारण आपकी मुस्लिम धार्मिक मजलिसों और फारसी भाषा के कवि सम्मेलनों में बड़ी आवभगत होने लगी। यह वह जमाना था जब सरकारी भाषा भारत में फ़ारसी थी जैसा कि अंग्रेजों के जमाने अंग्रेजी थी। इसलिये हर एक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिन्दू, मुसलमान जिसको ऊँचे दरजे की शिक्षा प्राप्त थी, फारसी भाषा जानता था।

संत सरमद को भगवत् कृपा से एक अनुपम स्वच्छ प्रेमी हृदय प्राप्त हुआ था। यही वजह थी कि आपका दृष्टिकोण साम्प्रदायिक संकीर्णता से सर्वथा शून्य था। इसका ज्वलंत प्रमाण यह है कि एक हिन्दू नवयुवक अभयचंद को आपने अपने पुत्र की तरह अपना लिया। अभयचंद भी आपकी पवित्रता और विद्वत्ता पर मोहित हो गया और वह आपके संग रहने लग गया। यह घटना अभयचंद के परिवार को बुरी लगनी ही थी। उन्होंने करांची शहर के हाकिम मिर्ज़ा मुहम्मद बेग बख्शी से मदद माँगी और उनके इशारे पर अभयचंद को छुपा लिया। परन्तु थोड़े ही दिनों में यह बात स्पष्ट हो गई कि अभयचंद भी संत सरमद के बिना नहीं रह सकता। यह देखकर उसके परिवार वालों ने संकीर्णता का त्याग कर दिया और अभयचंद फिर संत के साथ रहने लग गया। अभय-चंद को अधिकारी और आदर्श पात्र जान संत ने उसे थोड़े ही अरसे में भक्तकवि और ज्ञानी बना दिया। जब वह कवि सम्मेलनों में संतजी की अनूठी कविताएँ अपनी प्रेम में सनी वाणी से पढ़ता तो सरमद साहब खुद अपनी रचनाओं को सुनकर झूम-झूम जाते।

संतजी की पवित्रता बहुत ऊँचे स्तर पर पहुँच चुकी थी, वे एक शक्तिशाली मस्त फकीर बन गए थे। ऐसा होने पर यह स्वाभाविक था कि दुनिया वाले अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये उन्हें घेरें। उनसे तंग आकर और उन्हें दूर रखने के उद्देश्य से आपने कपड़े उतार दिये और नंगे रहने लग गए। लोगों ने फिर भी पीछा न छोड़ा तो आप कराची से लाहौर चले गये। वहाँ ग्यारह वर्ष रहे और १६२४ में आगरा से होते हुए हैदराबाद (दक्षिण) पहुँचे। वहाँ थोड़े ही दिन रहे फिर आगरा और अन्त में दिल्ली आ गए।

आपकी ख्याति सारे दिल्ली शहर में फैल गई। बादशाह शाहजहाँ के कानों तक आपके चमत्कारों की कहानियाँ पहुँचीं। शाहजहाँ ने कोतवाल इनायत खाँ को सरमद साहब की आध्यात्मिक स्थिति की जाँच के लिए नियुक्त कर दिया। उसने संत जी से मिलने की बार-बार कोशिश की परन्तु वे उसे कहीं नजर न आए। आखिर जब उसकी जाँच का समय पूरा हो गया और वह वापस चला गया तब संत जी अपने ही स्थान पर मौजूद मिले।

एक दफा संतजी को एक मस्जिद में ले जाकर नमाज़ पढ़ने के लिए

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मजबूर किया गया। आपको एक कम्बल ओढ़ा कर पंक्ति में खड़ा कर दिया गया परन्तु नमाज के आरम्भ के थोड़े ही पीछे आप पंक्ति से बाहर निकल आए और उसी मस्जिद के अन्दर एक स्थान पर जाकर बैठ गए। लोगों ने पूछा—'हजरत यह क्या ?' आपने कहा—"जब भगवद् आराधना करते समय मन उसमें न लगा हो तो वह भजन का मजाक है। इमाम साहब (जो नमाज पढ़वा रहे थे) का दिल इस फिक्र में है कि कुछ धन मिले तो वे अपनी पुत्रियों का विवाह कर दें। उनसे कहिये कि यहाँ एक निधि गड़ी हुई है, उसे काम में लाएँ।" मिट्टी खोदकर देखा गया तो सचमुच वहाँ एक खजाना मिला।

एक दिन औरंगजेब की लड़की जेबुन्निसा की सवारी उस चौराहे से निकल रही थी जहाँ संत सरमद अपनी मौज में नंगे बैठे बालकों की तरह मिट्टी के घर बना रहे थे। शाहजादी संतजी के सामने हाजिर हो गई। फिर जो प्रश्न-उत्तर हुए वे इस प्रकार थे—

शाहजादी—क्या कर रहे हो ?

सरमदजी—स्वर्ग के महल बना रहा हूँ।

शाहजादी—क्या बेचने के लिए बना रहे हो ?

सरमदजी—हाँ।

शाहजादी—एक महल को किस कीमत पर बेचोगे ?

सरमदजी—तम्बाकू के एक सुल्फे में।

शाहजादी ने फौरन एक सुल्फा तम्बाकू मँगा दिया और संतजी ने एक मिट्टी के घर के चारों तरफ उँगली से एक गोलाकार लकीर खींचकर लिख दिया कि मैंने इस स्वर्ग के महल को शाहजादी जेबुन्निसा के नाम एक सुल्फे तम्बाकू में बेच दिया। उसी रात औरंगजेब ने स्वप्न में देखा कि वह स्वर्ग में पहुँचा है। वहाँ एक बड़ा शानदार महल है जिस पर लिखा है—यह महल शाहजादी जेबुन्निसा ने मोल लिया है। बादशाह ने उस महल में प्रवेश करना चाहा परन्तु इजाजत नहीं मिली। नींद से उठते ही बेटी को बुलाया और सब हाल सुन लेने के बाद इतना प्रभावित हुआ कि फौरन संतजी की खिदमत में हाजिर होकर एक महल अपने लिये भी माँगा। इस पर सरमदजी मुस्कराए और बोले—"आलमगीर, ऐसा खरीदना और बेचना रोज-रोज नहीं होता।"

एक जुम्मे के दिन औरंगजेब जामे मस्जिद में नमाज पढ़ने जा रहा था। संतजी चौराहे पर हमेशा की तरह नंगे बैठे थे। पास में एक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कम्बल पड़ा था। औरंगजेब ने उन्हें इस हालत में देखा तो पास जाकर अर्ज की—आप इस तरह आम रास्ते पर तो नंगे न बैठा करें। कम से कम यह कम्बल, जो आपके पास पड़ा है, ओढ़ लिया करें। सरमद ने औरंगजेब की तरफ कड़ी नजर से देखते हुए फरमाया, "ला तू ही उढ़ा दे।" जैसे ही औरंगजेब ने कम्बल का कोना उठाया कम्बल के नीचे मनुष्यों के ताजा कटे हुए सिर रखे हुए उसे दिखाई दिए जिनसे खून रिस रहा था। उनमें औरंगजेब के तीनों भतीजों और उसके साथियों के चेहरे भी शामिल थे। बादशाह यह दृश्य देखकर काँप गया और पकड़ा हुआ कम्बल हाथ से छूट गया। संतजी ने फरमाया "अब तू ही बता कि तेरे पापों को छुपाऊँ या अपने शरीर को।"

संत सरमद नंगे तो रहते ही थे। उन्होंने कलमा भी आधा पढ़ना शुरू कर दिया। मुसलमानों का कलमा दो हिस्सों में है। पहले भाग का अर्थ "नहीं है दूसरा कोई और अल्लाह के सिवा" और दूसरे भाग का अर्थ हैं कि "मुहम्मद अल्लाह का दूत है।"

सरमद तो पूर्ण संत थे, उनकी सर्वंखल्विदं ब्रह्म की स्थिति थी। व कलमे का केवल पहला भाग ही पढ़ते। आम जनता में इस बात की चरचा हो गई और मुल्ला-काजी सन्तजी के खिलाफ हो गए। बात यहाँ तक बढ़ी कि औरंगजेब उन लोगों के संगठित दबाव के विरोध में सफल न हो सका और उसने संत सरमद के लिए मौत की सजा का हुक्म दे दिया।

इस पर सन्तजी के कई बड़े-बड़े भक्तों ने आपके पास पहुँचकर प्रार्थना की कि वे पूरा कलमा पढ़ने पर राजो हो जावें और नंगा रहना भी छोड़ दें। उन्होंने सरमदजी से अर्ज की कि "अगर आपको अपना जीवन प्यारा नहीं है तो न हो, मगर हमें आपकी भारी आवश्यकता है। इसलिये आप कृपा करके अपनी जिद को छोड़ दें।"

कहते हैं कि इस बात पर सन्त सरमद मुस्कराए और बोले "अब समय आ गया है कि हमारी वाणी को बन्द किया जाय, इसकी जो लहरें वातावरण में फैल चुकी हैं वे हमेशा-हमेशा गूँजती रहेंगी। फिर आपने यह शेर उसी समय फारसी भाषा में बनाकर पढ़ा—

"उमरीस्त कि आवाज़ए मन्सूर कोहन शुद।
मन अज़ सरेनौ जलवा दहम दारो रसन रा॥

बहुत-बहुत दिनों से मन्सूर की ख्याति पुरानी पड़ चुकी है, अब मैं फिर से सूली और रस्सी के लोगों को दर्शन कराऊँगा।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शाही हुक्म के अनुसार हँसते-हँसते सन् १६६० ई० में आपने अपनी कुरबानी दे दी।

आपका मजार (समाधि) देहली में जामे मस्जिद के नीचे उसी जगह बना है जहाँ आप शहीद हुए थे।

औरंगजेब जब मरने लगा, तब उसके मन में जो सबसे बड़ी पीड़ा थी, वह सरमद को मरवा देने की थी और आखिरी प्रार्थना जो औरंगजेब की थी वह यह थी कि 'मैंने कितने ही पाप किये हैं, उनकी मुझे फिक्र नहीं, लेकिन एक सरमद को मारकर जो पाप मैंने किया है, वह काफी है। अगर यह मेरा गुनाह माफ हो जाय तो सब माफ है। अगर यह माफ न हो तो मेरे लिये कोई उपाय नहीं है।''

■

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मन, तू निराश न हो

माँ आईं, माँ बैठीं और माँ रवाना भी हो गईं। चारों ओर विखेर गईं आनन्द के क्षण। कुल डेढ़ घण्टा समय, समय की इस स्वल्प परिधि में क्या नहीं किया, क्या नहीं देखा। माँ ने क्या नहीं कर दिखाया, विश्व को विश्ववासी को।

माँ सर्वदा ही आती रहती हैं, महान् से महान् कार्य, विशाल से विशाल उत्सव होते रहते हैं, माँ के सानिध्य में आनन्द का समुद्र उमड़ता ही रहता है प्रतिदिन। परन्तु डेढ़ घण्टे की इस क्षुद्र घड़ी में, माँ की पराशक्ति तथा विभूति की जो झलक प्रकाशित हुई तथा आनन्द का जो स्रोत छलका, वह अनन्त जीवन को अनन्त काल तक पुलकित करता रहेगा। माँ की आज की इस लीला में एक अलौकिक भावधारा स्फुरित हो रही थी।

६ मार्च को श्री श्री माँ भारत की पश्चिमी सीमान्त सुदूर गुजरात में नर्मदा के तट पर भीमपुरा के आश्रम में उपस्थित थीं और १० मार्च को वृन्दावन, लखनऊ, कलकत्ता होकर प्रातः वाराणसी पहुँची। स्वभावतः ही माँ की उपस्थिति सर्वत्र अप्रत्याशित थी। रेलपथ द्वारा केवल मात्र चार दिनों में यह यात्रा असम्भव ही प्रतीत होती है। परन्तु माँ के लिये सब सम्भव है।

परमपूजनीया माँ अपने ही विशेष ख्याल से ही ९ ता० को कलकत्ता स्थित 'बेलुड़ मठ' में पधारीं। वहाँ पर कुछ घण्टों की अवस्थिति के उपरान्त रवाना होकर ता० १० को प्रातः मुगलसराय स्टेशन पहुँचीं। मुगलसराय से गाड़ी द्वारा वाराणसी पहुँचते ही श्री श्री अन्नदा गुरुकुल की संचालिका गंगादेवी को रोगशय्या पर दर्शन देती हुईं, रोगपीड़ित श्री अभय महाराजजी को दर्शन से परितृप्त करती हुईं तथा मातृगत-प्राणा शोकाकुला वृद्धा को सान्त्वना प्रदान करती हुईं श्री श्री माँ ने प्रातः दस बजे के लगभग आश्रम प्रांगण में प्रवेश किया। अप्रत्याशित रूप से मातृदर्शन पाकर चारों ओर आनन्द की लहर दौड़ गयी।

आश्रम की छोटी-सी वाटिका में फूल मुस्करा रहे थे, कलियाँ झूम रही थीं, मानो वे इसी प्रतीक्षा में ही थीं। आज उनका खिलना, उनका हँसना सार्थक हुआ। क्योंकि इसके कुछ माह पूर्व जब शीतकाल में

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाराणसी में श्री श्री माँ उपस्थित थीं तो यह पौधे अपना शून्य भाण्डार लेकर खड़े थे, श्री श्री माँ के चरणों में अर्पण करने को उनके पास कुछ नहीं था। इस अभाव को वसन्त के द्वारा पूर्ण कर वे अपना पुष्प-भाण्डार लिये विकसित हुए तो श्री श्री माँ अनुपस्थित थीं मानो मूक पौधों की आन्तरिक पुकार ही जगज्जननी जगदम्बा को थोड़े क्षण के लिये यहाँ खींच लाईं।

माँ आयीं, बरामदे में बैठीं। आश्रमवासियों ने माँ के दर्शन किये। बाहर प्रांगण में धूप की छाँह करने के लिए चँदोवा टाँगा गया। चादरों से आस-पास की धूप को रोकने की व्यवस्था की गयी। कारण अज्ञात था। व्यवस्था होनेपर श्री श्री माँ वहाँ पधारीं। आश्रम के वयोवृद्ध ब्रह्मचारी योगेश दा तथा वयोवृद्ध संन्यासी श्री नारायणनन्द तीर्थजी माँ के समीप बैठे। अन्य लोगों को हटा दिया गया। थोड़ी देरमें पर्दा हटाया गया, देखा कि योगेश दा नूतन काषायवस्त्र धारण कर बैठे हैं। उनके चेहरे पर एक दिव्य आनन्द का प्रकाश नेत्रों से आनन्दाश्रु छलक रहे हैं। कुछ व्यक्त करने में असमर्थ हैं, माँ के प्रति उनकी दृष्टि निबद्ध है। माँ अत्यन्त प्रफुल्लता से सबसे कह रही हैं, "निरंजनानंदजी को प्रणाम करो", फोटो खींचो। फोटो खिचवाने को माँ उत्साहित होकर कहती जा रही हैं। अचानक कहीं से एक साधारण विदेशी घूमते-घूमते वहाँ उपस्थित हो गया। उसके गले में एक छोटा-सा कैमरा। माँ ने उससे कहा—"फोटो खींचो।" फोटो खींची गई।

माँ की यह लीला देखकर रोम-रोम अवाक् हो गया। चर्मचक्षुओं ने देखा माँ की यह अभावनीय लीला। रोम-रोम पुलकित हो उठा। मुँह से निकला—माँ तुम क्या नहीं कर सकती हो। कहाँ से कहाँ आयीं, क्या कर गयीं। माँ के लिये यह संन्यास दीक्षा दिलवाने का समय कैसा अनुकूल था। तिथि तो उत्तम थी ही, सामने महादेव का प्राचीन लिंग, बिल्व वृक्ष, पुष्प विकसित सुरम्य वाटिका, गंगा का परम पवित्र तट, कैसा अनुपम संयोग। संन्यास-दीक्षा के अनन्तर माँ किसी अलौलिक घटना का वर्णन कर रही थीं। माँ यद्यपि भाषा द्वारा वर्णन कर रही थीं पर माँ के उस अनुपम दिव्यलोक की घटना का ठीक-ठीक ग्रहण करना असम्भव था। जो भी हो मातृ-मुख निःसृत मधुमिश्रित स्वरगुंजन ही मन प्राण को मुग्ध कर देते हैं।

माँ तो आती ही रहती हैं। पर आज के इस आगमन में क्या ही एक अभिभूत करानेवाली शक्ति थी, जो वर्णनातीत है। माँ के आने पर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

असंख्य भक्त माँ के दर्शन करके धन्य होते हैं, परन्तु कितने ही वृद्ध-वृद्धा रोगी ऐसे हैं जो माँ के दर्शन से वंचित रहते हैं। परन्तु आज माँ की यह करुणा-लीला थी, डेढ़ घंटे में माँ ने असम्भव कर दिखाया। रोगपीड़ितों को दर्शन दिया। वर्षों से मातृ-दर्शन से वंचित वृद्धा को मातृ-दर्शन हुए। जराग्रस्त ब्रह्मचारी का यह संन्यास दीक्षा। यही है माँ की करुणा। माँ का कार्य समाप्त हुआ। यात्रा का समय हो गया। माँ रवाना हो गईं। छोड़ गयीं एक अपूर्व आनन्दानुभूति, मूक कर गयीं। हमारी वाचालता को कर गयीं हृदय को परिपूर्ण।

माँ का सान्निध्य पाने का अवसर अनेक दिनों से हुआ। कभी-कभी अत्यन्त निकट से मातृ-संग लाभ हुआ। माँ अनेकों बार अप्रत्याशित रूप से आईं-गईं। परन्तु आज की इस डेढ़ घटिका की स्वल्प परिधि में माँ दे गयी करुणा की, दया की एक मुस्कान झड़ी, जो अनन्त काल तक जीवन को अपनी संजीवनी शक्ति द्वारा संजीवित करती रहेंगी। निराश जीवन की आशा की झलक मिलती रहेगी।

मानव मन, तुम निराश न हो, दुःखी न हो, चिन्तातुर न हो। तुम्हारी करुणामयी, दयामयी, कृपामयी, माँ सर्वदा सतर्क रूप से तुम्हारे समीप विराजमान हैं, तुम्हारी सर्वस्व वही हैं, वही हैं, वही हैं।

जय माँ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्थितप्रज्ञ प्रकरण

—श्री रामकुमार भुवालका—

श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय के अन्त में अर्जुन के प्रश्न से लेकर अध्याय के शेष तक (५४ श्लोक से ७२ श्लोक तक) स्थितप्रज्ञ प्रकरण है। अर्जुन ने स्थितप्रज्ञ के लक्षणों को जानना चाहा है। किन्तु "स्थितप्रज्ञ"—इस शब्द का व्यवहार अर्जुन ने ही सर्वप्रथम किया है। अब मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि अर्जुन के चित्त में इस प्रश्न का बीज कहाँ से आया ? आचार्य चरणों ने उत्तर दिया है कि, "समायावचला बुद्धि रिति श्रुत्वा तत्वतो योगिनः लक्षणं पृच्छति" (विश्वनाथ)। "प्रश्नबीजं प्रतिलभ्य अर्जुन उवाच लब्धिसमाधिप्रज्ञस्य लक्षणबुमुत्सया" (शंकर)।

"समाधौ अचला बुद्धिः" पूर्वोक्त (५३) मन्त्रोक्त श्रीमद्भगवदुक्ति में ही प्रश्न का बीज अन्तर्निहित है—आचार्य चरणों का यही अभिमत है। इस समाधि शब्द का अर्थ शंकराचार्य ने किया है "आत्मा" और श्रीधर ने इसका अर्थ किया है "परमेश्वर"। इन सबने समाधि शब्द की व्युत्पत्ति 'समाधीयते चित्तमस्मिन्'—इसी रूप में की है। इस प्रकार की व्युत्पत्ति और व्याख्या एक प्रकार से विचित्र ही प्रतीत होती है। प्रचलित अर्थ में समाधि एक अवस्था का नाम है, वस्तु का नाम नहीं है। ध्येय वस्तु में चित्त स्थिर होकर जब चित्तवृत्ति लुप्त हो जाती है, ऐसी अवस्था को ही समाधि कहा जाता है। समाधि अवस्थामें चित्त "आत्मसंस्थ" हो जाता है। यहाँ पर आचार्यों ने समाधि शब्द से अवस्था को न मानकर ध्येय वस्तु को ही माना है। मालूम होता है, ऐसा न करने से निश्चला और अचला पदद्वय की व्यर्थता प्रमाणित होती है। एक ही श्लोक में निश्चला और अचला दोनों शब्दों को पुनरुक्ति न बताकर आचार्यों ने इसे सिर्फ अर्थ का भेद ही बताया है। निश्चला का अर्थ उन्होंने "विषयान्तरैरनाकृष्टो" ओर अचला का अर्थ "अभ्यासपाटवेन" तत्रैव स्थिरा—अर्थात् नाना प्रकार विषयों द्वारा चित्त का आकर्षित न होना एवं पुनः-पुनः अभ्यासानुसार ध्येय वस्तु में चित्त का स्थिर होना माना है। यह एक ही वस्तु को दो प्रकार से देखने के लिए कहना ही है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समाधि में निश्चला स्थिति और अचला बुद्धि की श्रवण करने से अर्जुन के मन में स्थितप्रज्ञ शब्द का उद्भव हुआ है। इससे यह समझा जा सकता है कि उस समय दार्शनिकों के बीच इस प्रकार के शब्द का प्रचलन अधिक था। अर्जुन ने "स्थितिप्रज्ञ" शब्द के साथ एक विशेषण लगाकर अपनी बात कही है। "समाधिस्थस्य"—यह शब्द "स्थितप्रज्ञ" शब्द का विशेषण है। विशेषण सिर्फ विशेषित ही नहीं करता—व्यावृत भी करता है। विशेषण की इस व्यावृत शक्ति के कारण स्थितिप्रज्ञ की दो अवस्थायें हैं। यह भली-भाँति समझ में आता है। स्थितप्रज्ञ कभी समाधिस्थ होता है कभी व्युत्थित होता है। अर्जुन यह जानना चाहते हैं कि समाधिस्थ स्थितप्रज्ञ का विशेष लक्षण क्या है? समाधिस्थ स्थितप्रज्ञ के सम्बन्ध में यह एक ही प्रश्न है। व्युत्थित स्थितिप्रज्ञ के सम्बन्ध में उन्होंने और भी तीन प्रश्न किये हैं—"किं प्रभाषेतं, किमासीतं, व्रजेत् किम् ?" समाधिस्थ स्थितप्रज्ञ के मन नहीं होता, कारण उसका मन लय हो गया है। अतः उसके सम्बन्ध में बाद के प्रश्नत्रय का उद्भव ही नहीं होता। व्युत्थित व्यक्ति ही चित्तयुक्त है। अतः वे क्या कहते हैं, किस प्रकार रहते और किस रूप में विचरण करते हैं—इन प्रश्नों का उद्भव होना समीचीन है।

मोट में प्रश्न चार हैं—(१) स्थितिप्रज्ञ का लक्षण क्या है? (२) किं प्रभाषेत ? सुखदुःखमानापमानयोः स्तुतिनिन्दयोः स्नेहद्वेषयोः समुत्यतयोः किं प्रभाषेत ? समाधि से व्युत्थित स्थितप्रज्ञ मानापमानादि की द्वन्द्वभूमि के सन्मुखीन होनेपर क्या कहते हैं? (३) किमासीत—तदिन्द्रियाणां बाह्यविषयेषु चलनाभवः कीदृदशः ? वे बाह्य विषयों को किस प्रकार अस्वीकार करते हैं? (४) व्रजेत् किम्—तेषु चलनं वा कीदृदशम्—वे बाह्य विषयों को किस रूप में स्वीकार करते हैं। द्वन्द्वभूमि में मन की प्रतिक्रिया क्या है? बाह्य विषयों को किस प्रकार अस्वीकार या स्वीकार करते हैं? परवर्ती तीनों प्रश्नों का यही तात्पर्य है। साधारण व्यक्तियों के साथ स्थितिप्रज्ञ व्यक्ति का पार्थक्य कहां है? यह अच्छी प्रकार से समझ लेना होगा—इसी उद्देश्य से इतने प्रश्न किये गये हैं।

आगे चलकर चतुर्दश अध्याय के गुणत्रय विभाग योग के २१वें श्लोक में अर्जुन ने बार-बार इसी प्रश्न को पूछा है। "कैर्लिङ्गैस्त्रीन् गुणान्" इत्यादि। हे प्रभो! गुणातीत से लक्षण क्या हैं? वे कैसे आचरण करते हैं, किस प्रकार रहते हैं, और गुणातीत होने के साधन क्या हैं? (कथं चैतान् किं साधनमित्यर्थः) किस प्रकार गुणातीत हुआ जा सकता है?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दूसरे और चौदहवें अध्याय के प्रश्न मूलतः एक ही है। परन्तु द्वितीय अध्याय की जिज्ञासा साधनों के विषय में नहीं पूछा गया है। चौदहवें अध्याय में साधन के सम्बन्ध में भी जिज्ञासा की गई है। दूसरे अध्याय में अर्जुन ने तार्किक की तरह तर्क द्वारा तत्त्वों के विषय में जानना चाहा है। चौदहवें अध्याय में अर्जुन साधक पथ के पथिक हो गये हैं और साधन-मार्ग में पाथेय की खोज कर रहे हैं।

यहाँ तक तो हमने प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न की ही समालोचना की। अब इसका उत्तर श्रवण करेंगे। प्रथम प्रश्न (का भाषा) का उत्तर एक ही (५५) श्लोक में दिया गया है। द्वितीय (किं प्रभाषेत) का उत्तर दो (५६/५७) श्लोक में है। तृतीय प्रश्न (किमासीत) का उत्तर दिया गया है ६ श्लोक में (५८-६३) चौथे प्रश्न (व्रजेत किं) का उत्तर दिया गया है ८ श्लोक में (६४-७१) अन्तिम ७२ श्लोक में प्रश्नोत्तरों का उपसंहार है। उत्तरदाता ने प्रश्नकर्त्ता की किसी भी क्षुद्र जिज्ञासा तक की भी उपेक्षा नहीं की है। उत्तारों में उत्तरदाता का कारुण्य और नैपुण्य दोनों ही प्रकट होता है।

प्रश्न के दृष्टिकोण से उत्तारों पर विचार न करके इनको अन्य प्रकार से तीन भागों में बाँटकर देखना चाहिए। ये तीन भाग हैं—(१) अन्वयमुखी, (२) व्यतिरेकमुखी, (३) अन्वयव्यतिरेकमुखी। जो प्रज्ञा में अवस्थित है, उनकी क्या अवस्था है, यही हुआ अन्वयमुखी विवेचन। जो प्रज्ञा में अवस्थित नहीं है उनकी कैसी दुरवस्था है, यह हुआ व्यतिरेकमुखी विवेचन। एक ही श्लोक में जो इस भूमिका में अवस्थित हैं और जो अवस्थित नहीं हैं दोनों की अवस्था के वर्णन का नाम अन्वय-व्यतिरेकमुखी विवेचन है। चार श्लोकों में (६२-६३-६७) व्यतिरेक इन श्लोकों के अलावा अवशिष्ट श्लोकों में अन्वयमुखी विचारों का समावेश है।

श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय को श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने "श्री गीतासूत्र" की संज्ञा दी है। बाद में जितनी भी बातें कही जानेवाली है, इसमें सूत्ररूप में समस्त बातें कह दी गई हैं। एक ही मार्ग द्वारा ऊर्द्ध, ऊर्द्धतर और क्रमशः चरम ऊर्द्ध में उठा जा सकता है। इस स्थितप्रज्ञ प्रकरण में हमें अनेक अभिनव तत्त्वों की जानकारी होगी।

जीवनयात्रा के दो मार्ग हैं। एक ऊपर को उठने का और दूसरा नीचे की ओर जाने का। नीचे का मार्ग जीवन-निर्वाह का है। एक मार्ग के द्वारा ऊर्द्ध, ऊर्द्धतर और क्रमशः चरम ऊर्द्ध की ओर उठा जा सकता है। दूसरे मार्ग द्वारा क्रमशः नीचे की ओर जात-जाते अधःपतन की चरम

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सीमा तक पहुँचा जा सकता है। सर्वोच्च प्रान्तका नाम है "ब्राह्मी स्थिति"। सबसे नीचे प्रान्त का नाम है विनाश (प्रणश्यति)। प्रणश्यति शब्द की व्याख्या करते हुए शंकराचार्य ने कहा है "पुरुषार्थायोग्या भवति"। श्रीधर ने व्याख्या की है "मृत्यतुल्यो भवति"। श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने कहा है "संसार कूपे पतति"।

मानव बीच में अवस्थित है। मननशीलता उसका धर्म है। मननशीलता बुद्धि का कार्य है। यह बुद्धि दो प्रकार की हैं—(१) आत्मप्रवणा, (२) विषयप्रवणा। साधारण मनुष्यों के लिए आत्मप्रवणा बुद्धि रात्रि विशेष है। जड़मुग्ध प्राणी इस रात्रि में निद्रित रहने के कारण प्राप्य मनुष्य ज्ञान की उपलब्धि नहीं कर पाता। किन्तु स्थितिप्रज्ञ व्यक्ति उसमें जागृत रहने के कारण आत्मबुद्धिनिष्ठ आनन्द का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है।

पक्षान्तर में जड़मुग्ध प्राणी विषयप्रवणा बुद्धि में सदा जाग्रत रहने के कारण विषयों से सम्बन्धित शोकमोहादि का अनुभव कर पाते हैं। किन्तु स्थितप्रज्ञ के लिए वही रात्रि विशेष है। वे संसारी व्यक्तियों को सुख-दुःख देनेवाले समस्त विषयों से उदासीन रहते हैं। स्वभोग्य विषयों को वे निर्लिप्त भाव से ग्रहण करते हैं।

(२)

दोनों मार्गों में रात-दिन का अन्तर है। जो ऊपर की तरफ धावमान हैं, वे नीचे के अन्धकार की तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखते। वे जितना उठते जाते हैं—प्रकाश पाते हैं। चरम सीमा पर पहुँच जाने पर वे "वरेण्यं भर्गः" की उपलब्धि करते हैं। जो नीचे की ओर उतरते जा रहे हैं वे ऊपर के आलोक को नहीं देख पाते। वे जितना ही नीचे उतरते जाते हैं, उतने ही अन्धकार के सन्मुखीन होते जाते हैं। अन्त में वे "अन्धतम" के बीच प्रवेश कर जाते हैं। एक ही सीढ़ी है। भगवद्भक्त उस पर उठता है और विषयासक्त उतरता है। प्रेम ऊपर की ओर उठता है और काम नीचे की ओर ले जाता है।

हम नीचे के मार्ग के विषय में ही प्रथम विवेचन करना चाहते हैं। कारण विपद संकुल (Danger Zone) स्थानों की खबर जान लेना ही पथिक के लिए सर्वप्रथम आवश्यक है। प्राणियों के स्वाभाविक स्थिति-स्थान से निम्नतम अन्धकूप में पड़ने के मार्ग में सात सीढ़ियाँ हैं। ये सीढ़ियाँ फिसलने वाली हैं। एक पर उतर जाने से दूसरी पर फिसल कर गिर पड़ने का भय है। गीताशास्त्र में इन सात सीढ़ियों के निम्न नाम

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बताये गये हैं—(१) विषयध्यान, (२) संग, (३) काम, (४) क्रोध, (५) संमोह, (६) स्मृति विभ्रम, (७) बुद्धिनाश—चरम सीमा विनाश।

मनोमय कोष का राजा मन है। उसका कार्य ध्यान या मनन करना ही है। मन के नीचे की ओर दो भूमिकाएँ हैं—प्राणमयी और अन्नमयी। मन के ऊँचे की ओर भी दो भूमिकायें हैं—विज्ञानमयी और आनन्दमयी। मन के ध्यान की वस्तु निम्न भूमिका में विषय भोग हो सकती है और ऊर्द्ध भूमिका में तत्त्व ज्ञान हो सकती है। इसी बात को अन्नमयादि तैत्तरीय उपनिषद् की परिभाषा में न कहकर यदि माण्डूक्योपनिषद् की भाषा में कहा जाय तो यही कहा जा सकता है कि, मन, तेजस भूमि में रहता है। उसके निम्नतर वैश्वानर भूमि और उर्द्ध स्तर में प्राज्ञ भूमि हैं। "प्राज्ञ भूमि" में पहुँच जाने का ही नाम है स्थितिप्रज्ञ। वैश्वानर भूमि पर पाँव धरते ही अधःपतनः की सीढ़ी पर उतरना आरम्भ हो जाता है। वैश्वानर भूमि ही जाग्रत भूमि है। प्राज्ञ भूमि सुषुप्ति भूमि है। अतः यह स्वाभाविक है कि साधारण प्राणी जब वैश्वानर भूमि में जागता है, उस समय संयमी व्यक्ति सुषुप्ति भूमि में सोता रहता है।

प्राज्ञ भूमि जो एकत्व और परम तत्त्व है, वैश्वानर भूमि में वही महत्त्व और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पाँच जड़ विषय हैं। मन साधारणतः इन समस्त इन्द्रियग्राह्य विषयों का ध्यान करता है। इस ध्यान को छोड़कर उसके लिये दूसरा उपाय नहीं है। उसे इन विषयों का ध्यान करना ही होगा। "परं दृष्ट्वा"—के बिना यह विषय ध्यान टूटने का नहीं। यह बात पीछे बताई जायेगी। सर्वप्रथम विषय ध्यान की ही बात हो जाय। विषयों के विषय में सोचते-सोचते मन के द्वारा यह 'विषय-संग' संग हो जायगा। कल्पना कीजिये कि आप सवेरे समाचार पत्रों में नित्यप्रति मोटर गाड़ी का विज्ञापन पढ़ते हैं। उसे पढ़ते-पढ़ते, सोचते-सोचते मन में उसका एक प्रतिबिम्ब अंकित हो जायगा। धीरे-धीरे मन ही मन गाड़ी में बैठकर घूमने के सुख की कुछ-न-कुछ अनुभूति होने लगेगी। इसे ही संग कहा जाता है।

'संग' की भावना से मन में एक गाड़ी खरीदकर उसका भोग करने की कामना प्रबल हो उठेगी। यही "काम" है। अब किसी युक्तियुक्त कारणों से आपके बड़े भाई ने आपको गाड़ी खरीदने में बाधा दी। उस समय आपको अपने बड़े भाई पर क्रोध होगा। संसार में कोई भी वांछित वस्तु बाधा के बिना नहीं मिल सकती। अतः क्रोध और काम दोनों ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आसपास में चलेंगे। काम्य वस्तु की प्राप्ति में जो प्रतिबन्धक होगा, उस पर क्रोध होगा ही। काम और क्रोध दोनों मिलकर "संमोह" का आह्वान करेंगे। संमोह में दो वृत्तियाँ हैं—गर्व और ईर्ष्या। आपके पास गाड़ी है या गाड़ी खरीदने की सामर्थ्य है पर न तो मेरे पास गाड़ी है और न मेरी सामर्थ्य ही है। आपको अपनी सामर्थ्य पर अहंकार होगा ही। आपके गाड़ी नहीं है और न खरीदने की सामर्थ्य भी नहीं है परन्तु मेरे पास है तब आप मुझसे ईर्ष्या करने लगेंगे। यह गर्व और ईर्ष्या मिलकर "स्मृति-विभ्रम" की सृष्टि करेंगी। इसके फलस्वरूप जो कुछ धर्म, कर्म और ज्ञान आपके अन्तःकरण में होगा उसका लोप हो जायेगा। जिस किसी प्रकार से भी हो स्वार्थ-सिद्धि की प्रबल वासना जगेगी ही। उस समय इस स्वार्थ-सिद्धि के लिए जालसाजी, जुआचोरी, मिथ्या प्रवचना आदि किसी भी उपाय का आश्रय लेने से आप चूकेंगे नहीं। उस समय आपका मन कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय करने में अक्षम हो जायगा—यही बुद्धि नाश की अन्तिम सीढ़ी है। इस स्थिति में मनुष्यत्व का विनाश हो जायेगा। कोई भी उपदेश उस समय काम नहीं आयेगा। घोर संसार-कूप में आप पड़ जायेंगे। मोक्ष और धर्म तो अति दूर की बात है, यहाँ तक की काम नामक पुरुषार्थ की प्राप्ति के भी आप अयोग्य हो जायेंगे। इसे ही आध्यात्मिक जगत् में कहा गया है—

"बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।"

संसार में रहने पर विषम ध्यान अनिवार्य है। विषयों का चिन्तन आध्यात्मिक जीवन में विनाश का उद्भव करेगा ही। तब क्या संन्यास ही श्रेयः का मार्ग नहीं है? गीता का कथन है—नहीं। यथार्थ में संन्यास लेकर कहाँ भागोगे। शरीर है, शरीर में इन्द्रियाँ हैं—बाहर में शब्दस्पर्शादि विषय समूह है, इन सबका परित्याग कर चले जाने के लिए स्थान कहाँ है? इस देह का विनाश हो जानेपर संचित कर्मबीज एक दूसरा शरीर तैयार करके ला देंगे। पर तुम्हें मुक्ति नहीं देंगे। छोड़ेंगे नहीं। तब उपाय क्या है? उपाय यही है कि प्रज्ञाभूमि में स्थित हो जाओ। स्थितप्रज्ञ हो जाओ। जो स्थितप्रज्ञ है, वह शान्ति प्राप्त करता है (स शान्तिमाप्नोति)। यह भूमि ऊँचे पर, उच्चतर पर, उच्चतक पर है। ब्राह्मी स्थिति पर्यन्त इसका विस्तार है। फिर भी साधक को चलना ही होगा। चलने के मार्ग में इस उर्द्ध्व भूमि को लक्ष्य में रखकर ही हमारी यात्रा होगी। बद्रीनाथ की यात्रा करनेवाले हृषीकेश पर्यंत जाकर लौट नहीं आते।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(३)

बद्री विशाल की सुदीर्घ घाटियाँ हैं। कोई उतरता है, कोई चढ़ता है। पथ एक है, गतियाँ दो हैं। यात्री का मुँह किस तरह है, इसी पर सब कुछ निर्भर करता है। बाहर की तरफ जिसका मुख है, जिसकी बुद्धि विषय प्रवणा है वे नीचे की ही ओर जाते हैं। नीचे की ओर उतरते-उतरते बुद्धिभ्रष्टता आकर प्रणश्यति की सीमा में रुकती है। जो अन्तर्मुखी हैं, जिनकी बुद्धि आत्मप्रवणता है, उनकी नजर ऊँच की ओर है, वे ऊँचे की तरफ ही जायेंगे। चलते-चलते उनका प्रज्ञा से साक्षात्कार हो जायगा। इसके बाद वे सर्वोच्च शिखर पर पहुंचकर ब्राह्मी भूमि में स्थित लाभ करेंगे। वहाँ पर स्थित हो जाने पर अन्त में ब्रह्म निर्वाण की प्राप्ति होगी।

नीचे की शंकास्पद फिसलनेवाली सीढ़ियों को देखा। अब ऊपर की शंखावृत—स्पाइरल सीढ़ियों का अवलोकन करेंगे। गिर पड़ने की सब समय ही सम्भावना है। परन्तु उठना प्रस्तुत सापेक्ष है। मन जिसका वशीभूत हो गया हो, वही उठने के लिए प्रस्तुत माना जायगा। प्रस्तुत या प्रवर्तक जीव का नाम है "विधेयात्मा" ?—किंकरीकृतमनाः। मन-महिषासुर के पतन हो जाने के बाद ही राग द्वेष रूपी निशुम्भ का पतन सम्भव है। राग द्वेषाविभुक्तात्मा होने से ही आत्मप्रसाद की उपलब्धि होगी। तब साधक प्रसन्नात्मा बनेगा। प्रसाद के फलस्वरूप "सर्व्वदुःखानां हानिः" अर्थात् समस्त दुःखों का अवसान होगा। तब वे अशोकात्मा होंगे। दुःखों के विनष्ट हो जाने पर ही बुद्धि का पर्यवसान अभीष्ट पदार्थ में होगा। (बुद्धिः पर्य्यावतिष्ठते) तभी साधक स्थितप्रज्ञ होगा—प्रज्ञा में उसकी स्थिति होगी। उसके बाद ब्राह्मी स्थिति की उपलब्धि करके साधक "ब्रह्मभूत" बनेगा। सबके अन्त में ब्रह्मनिर्वाण, विधेयात्मा, विमुक्तात्मा, प्रसन्नात्मा, अशोकात्मा, स्थितप्रज्ञ, ब्राह्मी स्थिति, ब्रह्म-निर्वाण या परा शान्ति सुलभ होगी।

सभी परा शान्ति की अभिलाषा रखते हैं। किन्तु अनेकों को ही यह प्राप्त नहीं होती। क्यों नहीं प्राप्त होती ? प्राणियों का चित्त अशान्त रहता है, इसलिए नहीं प्राप्त होती। कहा है 'अशांतस्य कुतः सुखं"। चित्त अशान्त क्यों हो गया है ? मनुष्य केवल विषयों की चिन्ता करता है, आत्म-चिन्ता नहीं करता (न चाभावयतः शान्तिः) मनुष्य आत्म-चिन्ता क्यों नहीं करता ? आत्म विषयक प्रज्ञा उसमें नहीं है। इसलिए (नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य)। प्रज्ञा क्यों नहीं है ? क्या प्रज्ञा को किसी ने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चुरा लिया है (तदस्य हरति प्रज्ञां) ? कितने चुरा लिया है ? 'इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनो नुविधीयते"—विषयभोगी इन्द्रियों में, जो कोई भी क्यों न हो, सभी चतुर चोर हैं। कोई भी इन्द्रिय बुद्धि का अपहरण कर विनाश-पथ की ओर अग्रसर करने में समर्थ है। चोरी का प्रमाण चाहते हैं तो लीजिए—

पतंगों की बुद्धि को आँखें चोरी करती हैं—अग्नि के रूप से आकृष्ट होकर। परिणाम स्वरूप पतंगों की मौत होती है। हस्तिनी के स्पर्श से आर्कषित होकर हाथी की बुद्धि का "त्वक्" अपहरण कर लेता है—परिणाम स्वरूप वह बन्धन में पड़ जाता है। कमल की सुगन्ध से आकृष्ट होकर नासिका भ्रमर की बुद्धि का अपहरण कर लेती है। इसका फल यह होता है कि वह मतवाला होकर पद्म की पंखुड़ियों में आबद्ध हो जाता है। व्याध की वंशी के स्वर से मुग्ध होकर कान हरिण की बुद्धि का अपहरण कर लेता है, फलस्वरूप वह अपने प्राण गँवा देता है।

वंशी के खाद्य पदार्थों को खाने के प्रलोभन में पड़कर जिह्वा मत्स्य की बुद्धि को हर लेती है, तभी वह मरण का वरण करता है। यथार्थतः कोई भी इन्द्रियाँ क्यों न हों, सबकी सब पक्की चोर हैं। किसी को भी वे विषद् की ओर अग्रसर करने में उस्ताद हैं। जिनकी समस्त इन्द्रियाँ ही वश में नहीं उनकी दुर्गति नहीं होगी तो किसकी होगी ? अतः ऊर्द्धमुखी यात्रा का प्रथम कल्प ही है "इन्द्रिय संयम"। जिसकी इन्द्रियाँ संयत हो गयी हैं वे ही विधेयात्मा हैं—उतराई, चढ़ाई को पार करने में वे ही समर्थ हैं।

असंयमी व्यक्ति चक्र की तरह घूमते-घूमते गिर पड़ता है। संयमी साधक शंख की तरह घूमते-घूमते उद्ध्वं भूमि पर आरोहण करता है। क्रमशः अनुकूल विषय उसको आकर्षित करके एवं प्रतिकूल विषय उसे विकर्षित करके यथभ्रष्ट नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में साधक राग-द्वेष विमुक्त हो जाता है। कोई यदि वह जिज्ञासा करे कि इस प्रकार की अवस्था की प्राप्ति के लिए क्या इन्द्रियनिग्रह एकान्त ही प्रयोजनीय है ? इन्द्रियों को विषयों से हटाकर सम्पूर्ण रूप से उसका विनिवर्तन करके क्या संन्यासावलम्बन एक बार ही आवश्यक है ? गीता का उत्तर है, नहीं। इन्द्रियाँ भी रहेंगी, विषय भी रहेंगे—ग्रहण भी करना होगा पर यह सब करना होगा वशीभूत इन्द्रियों के माध्यम से।

वशीभूत इन्द्रियों द्वारा विषयों के ग्रहण से आत्मप्रसाद का उद्भव होता है। वशीभूत इन्द्रियों द्वारा विषय-भोग करने से आत्मग्लानि मात्र

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपलब्ध होती है। जिस वस्तु में जो आसक्त है उसी वस्तु का भोग करने से सुख का उद्भव नहीं होता। लोभी व्यक्ति आहार का आनन्द नहीं प्राप्त कर सकता। कल्पना कोजिये कि आप दुग्धफेन के समान सफेद शय्या पर प्रति दिन शयन करते हैं। सोते-सोते ऐसी स्थिति अपने आप हो गई है कि इस प्रकार की शय्या न होने पर आपको नींद ही नहीं आती। अब आप इस कोमल शय्या की कोमलता के स्पर्शजनित सुख का अनुभव नहीं कर पा रहे हैं। कल्पना कीजिये कि मैं भुजाओं का सहारा लेकर जमीन पर पड़े रहकर ही प्रगाढ़ निद्रा के सुख का उपभोग कर सकता हूँ। मुझ यदि आप इस "दुग्ध फेनवत्" श्वेत शय्या पर शयन करने दें तब इसकी कोमलता का स्पर्श-सुख जो मुझे मिलेगा उसका शतांश भी आपको नहीं मिलेगा।

भोगी भोगों से वंचित रहता है। त्यागी ही भोगों का अधिकारी है। यह एक रहस्य है। संयतेन्द्रिय द्वारा भोग करने से आत्मा का प्रसार होता है। प्रसारित होना ही आत्मा का स्वभाव है। संकुचित होने से ही आत्मा विपन्न हो जाता है (प्रसन्नचेतसः)। आत्मा की प्रसन्नता में ही समस्त दुःखों की विरति है। प्रसन्नचित व्यक्ति की बुद्धि ही प्रतिष्ठित होती है। प्राज्ञ भूमि पर पहुँचकर ही साधक वाह्य विषयों में निरपेक्ष हो जाता है। इसीलिए वह आतम प्रसाद में भरपूर हो उठता है। दूसरों को देखने की चिन्ता में रत रहने के कारण आत्मा अपने आपको नहीं देख पाता। दूसरों को देखना बन्द करने से ही 'स्व' को देखना शुरू हो जाता है। 'स्व' का देखना ही परम प्रसाद है। अपने स्वरूप की सत्ता की उपलब्धि ही आनन्द की खान है। अपने को देख पा लेने से दूसरों को भी यथार्थ रूप में देखा जा सकता है। तभी आनन्द-समुद्र में गोता लगाया जा सकता है।

मन का उत्कृष्ट कार्य है—मनन करना। श्रुत की भाषा में शुद्ध मनन भूमि का ही नाम है तेजस भूमि। प्रत्येक मानव ही स्वप्न के समय उसी भूमि में रहता है। मन वश में न रहने के कारण असम्वन्ध स्वप्न आया करते हैं। साधारण व्यक्ति की स्वप्न-भूमि ही साधक को ध्यान-भूमि है। साधक ध्यानावस्था में तेजस भूमि में विचरण करता है। ध्यान के भंग हो जाने पर जाग्रत अवस्था में साधक-असाधक सभी वैश्वानर भूमि पर उतर आते हैं। ध्यान भंग न होकर प्रगाढ़तर होने से ही साधक ऊपर उठता है। उस समय मनन स्थगित हो जाता है। प्रज्ञा-भूमि में स्थिति होती है। प्रत्येक नर-नारी ही सुषुप्ति अवस्था में प्रज्ञा-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भूमि की आनन्दमयी अवस्था यत्किंचित अनुभव उपलब्ध कर पाते हैं। सुषुप्ति अवस्था में शरीर और मन की सारी क्लान्ति दूर हो जाती है।

प्रज्ञा भूमि में साधक के समस्त दुःखों का अवसान होता है। पुत्र-शोकातुरा माता भी सुषुप्ति अवस्था में पुत्र-शोक भूल जाती है। प्रज्ञा-भूमि में स्थितप्रज्ञ साधक भी उसी प्रकार शोक रहित हो जाता है। प्रतिदिन की सुषुप्ति अवस्था और प्रज्ञाभूमि में स्थित साधक की अवस्था में यही पार्थक्य है कि नींद भंग हो जाने पर माता का पुत्र-शोक पुनः पूर्ववत् लौट आता है किन्तु स्थितप्रज्ञ साधक को शोक, दुःख कभी भी स्पर्श तक नहीं करता। सुषुप्ति में एक अपरिसीम अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होती है—सभी को यह अनुभूति होती है। परन्तु प्रज्ञाभूमि में यह आत्म प्रसाद का एक आभास मात्र है।

द्वितीय अध्याय गीता का सूत्रस्वरूप है। समस्त गीता की सारी बातें ही सूत्र में इस अध्याय में पाई जायेंगी। गीता का लक्ष्य है जीव को जीवन्मुक्त अवस्था है। प्रगाढ़ निद्रा में मानव जिस प्रकार शान्त रहता है, जागृत अवस्था में यदि वह उसी शान्त अवस्था को बनाये रख सके तब वह बहुलांश में स्थितप्रज्ञ के समान हो सकता है। प्रगाढ़ सुषुप्ति और जागृत अवस्था, इन दोनों का जो जीवन में समान रूप से समन्वय साधन कर लेते हैं वे ही स्थितप्रज्ञ या जीवन्मुक्त है।

इस अवस्था में पहुँचने के दो ही मुख्य उपाय गीता में बताये गये हैं। द्वितीय अध्याय में वे पाये जाते हैं। (१) युक्त आसीत मत्परः (२) परं दृष्ट्वा निवर्तते। ये दोनों बातें गीता में विभिन्न भाषा में अनेक बार कही गई है। गीता के उपसंहार में—अठारहवें अध्याय में "मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु" एवं "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" ये गुह्यतम मंत्रद्वय मत्परः एवं परं दृष्ट्वा इन दो वाक्यों का ही सुपरिस्फुट रूप है। इस मार्ग की प्रस्तुति में ही इन्द्रिय-संयम है। विवेक विचार द्वारा इन्द्रियों का संयम नहीं होता। कारण विचार द्वारा विषयानुराग जरा भी कम नहीं होता।

एकमात्र भगवत्परायण (मत्परः) व्यक्ति के लिए ही इन्द्रिय-संयम सम्भव होता है। विषयों का त्याग करने से ही त्याग नहीं होता। भीतर में विषयतृष्णा वर्तमान रहते जोर पूर्वक त्याग को त्याग नहीं कहा जा सकता। जिसकी विषयतृष्णा दूर हो गई हैं, बाह्य दृष्टिकोण से वह त्यागी के समान दिखाई नहीं पड़ने पर भी वही यथार्थ में त्यागी है। विषयतृष्णा के दूर होने का उपाय क्या है? अनेक उपाय है। श्री गीता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की युक्ति में सर्वश्रेष्ठ उपाय है "परं दृष्ट्वा निवर्तते—परं परमार्थतत्त्वं ब्रह्म दृष्ट्वा उपलभ्य निवर्तते निर्वीजं विषयज्ञानं सम्पद्यते। नासति सम्यग्दर्शने रसस्य उच्छेदः। श्रीशंकर ने अपने भाष्य में कहा है—ब्रह्म का दर्शन हो जाने पर विषयज्ञान निर्जीव हो जाता है। सम्यग्दर्शन न होने तक विषय रस का उच्छेद नहीं होता। स्थितप्रज्ञ का मन परम ध्येय वस्तु में समाहित रहने के कारण विषयों के पीछे भागता दौड़ता नहीं। उसकी इन्द्रियाणि केवल निरुद्ध ही हो जाती हो, ऐसी बात नहीं है। वे (इन्द्रियाँ) उसकी आत्मा के स्वरूपानन्द रस में भी निमज्जित हो जाती है। समुद्र में समस्त नदी-नाले का जल प्रवाहित करते हैं किन्तु समुद्र सदा अचल और सामानरूप से प्रतिष्ठित ही रहता है, उसी प्रकार परम सत्ता के दर्शन हो जाने पर सारी कामनायें निर्वापित हो जाती हैं। भोगमय संसार के रूपरसादि का सुयोग जीवन के द्वारा उपस्थित होने पर भी स्थितप्रज्ञ शान्त और अचल रहता है। यह अवस्था ही विपुल आनन्द का सागर है। संसार में यही वस्तु सुदुर्लभ है। एकमात्र "कृष्णकामी" ही इसे प्राप्त कर सकते हैं। कामकामी के लिए तो यह दुष्प्राप्य है।

प्रज्ञाभूमि के ऊपर ही तृतीय और ब्रह्मभूमि है। प्रज्ञाभूमि में ही ब्रह्म भूमि प्रतिष्ठित है। प्रज्ञाभूमि में रहकर जब परं वस्तु की अनुभूति करते हैं तब साधक की ब्राह्मी स्थिति होती है। प्रज्ञाभूमि का आनन्द आत्म प्रसाद है और ब्रह्मभूमि का आनन्द परमात्मा का प्रसाद है। यही पार्थक्य है। परम वस्तु का साक्षात्कार हो जाने पर आत्मा यह जान सकता है कि उसकी जो कुछ सम्पत्ति वह सारी परमात्मा की है। स्थितप्रज्ञ की प्रज्ञा यह समझ लेती है कि "तोमारि गर्व्वे गर्विनी आमो"। मेरे लिए जो कुछ भी सुखमय है, वह सभी उसका है।

जुष्टं यदा पश्यति अन्यमीशं।
अस्य महिमानं इति वीतशोकः॥

परम वस्तु का दर्शन करने पर इसी प्रकार की अनुभूति होती है कि मेरी महिमा (बड़प्पन) वे ही हैं। मेरा ऐश्वर्य उनका ही है, मेरे लिए वे ही हैं और मेरा सर्वस्व ही उनका है। यह अभेद दृष्टि की ब्राह्मी स्थिति प्रतिष्ठित प्रज्ञा की यही मूलभित्ति है जिन्होंने इस ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर लिया है, उनकी अज्ञानता के पुनः अभ्युदय होने की आशंका नहीं है। सूर्योदय होने पर जिस प्रकार अन्धकार नहीं रहता उसी प्रकार ब्राह्मी स्थिति की निर्मल प्रतिमा के सामने अज्ञानता का आविर्भाव नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होता।

अध्याय के शेष मंत्र में ब्राह्मी स्थिति की बात कह देने के बाद ही "स्थित्वास्तामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति" कहा है। अर्थात् अन्तकाल में भी इस ब्राह्मी स्थिति का आश्रय ग्रहण करते हुए जीवन्मुक्त साधक ब्रह्म निर्वाण को प्राप्त होता है। वृद्ध राजा की मृत्यु होने पर जिस प्रकार युवराज पूर्वाधिकृत युवराज पद का आश्रय लेकर उत्तराधिकृत राज्य के सिंहासन पर आरूढ़ होता है, ठीक उसी प्रकार जीवन्मुक्त ब्राह्मी स्थिति का भरोसा करके अन्तकाल में ब्रह्मनिर्माण को प्राप्त करते हैं। जो जीवितावस्था में ब्राह्मी स्थिति है, वही अन्तकाल में ब्रह्मनिर्वाण है। राजकुमार का पूर्व में प्राप्त युवराजत्व ही आज उत्तराधिकृत पैतृक राज्य है। ब्राह्मी स्थिति केवल ब्रह्मनिर्वाण की जीवातु नहीं हैं। ये दोनों हीं अभिन्न हैं। "साधने भाविबे याहा, सिद्ध देह पाबे ताहा।" साधना ही भावना और सिद्ध की उपलब्धि दोनों एक ही वस्तु हैं।

ब्रह्मनिर्वाण अवस्था का स्वरूप क्या है? गीता के पंचम अध्याय में इसीका आभास दिया गया है। यथा—

"योऽन्वः सुखोऽन्तरारामस्तयान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥

—गीता ५।२४

है, अन्तरात्मा में ही जिसके ज्ञान का आलोक है, अपना कहने के लिए जो कुछ हैं—सब अन्तरात्मा का है, इस ज्ञान का नाम ही ब्रह्मनिर्वाण है। ब्रह्म सत्ता में जीव भाव का लय हो जाता है। समुद्र में तरंगों का सम्मिश्रण होता है, यह विनाश नहीं। भूमा में अवस्थिति है डिम्ब मध्यस्थ पक्षी का मुक्त आकाश में उड्डयन है, क्षुद्र सीमाबद्धता का निर्वापन है। इसमें ही समस्त कातरता की तृप्ति हैं और समस्त अनुनय विनय की परिसमाप्ति है। इसकी दो कुंजियाँ हैं। संक्षिप्त रूप में (१) युक्त आसीत् मत्परः (२) परं दृष्ट्वा निवर्तते।

भगवान् का वक्तव्य समाप्त हो गया। यदि अर्जुन प्रश्न नहीं करते तो गीता आगे नहीं बढ़ती। क्यों और कौन-सा प्रश्न अर्जुन के मन में उठा, यही अब सुनना है। क्रमशः सभी सुना जायगा, यही आशा अन्तःकरण में जागृत रही।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बीर-बरह्म

—डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल—

केले के पेड़ में जैसे एक के ऊपर एक चढ़े हुए पर्तों के भीतर गाभा रहता है वैसा ही कुछ भारतीय संस्कृत का रूप है जिसमें अनेक संस्कृतियों के खाल एक दूसरे के ऊपर चढ़ते चले गए हैं। वे सब एक दूसरे के साथ चन्दन की शीतलता से इस प्रकार मिल बैठे हैं जैसे गंगा की धारा में आपसी टक्करों से गोलमटोल बने हुए गँगलोढ़े एक साथ पड़े रहते हैं, एवं और भी अधिक अभेद की स्थिति प्राप्त करने के लिये टकराते रहते हैं। यह संस्कृति विचित्र है। कौन इसके सारे पर्तों को खोलकर पढ़ सकता है? कहाँ से क्या आ गया है, किसने कितना दिया है और किसने कितना लिया है, इसका सच्चा लेखा-जोखा लगाना कठिन काम है। संस्कृति इतिहास के महागणकों का बूता उसके आगे हार जाता है। फिर भी रेडियम के उछटते हुए स्फुलिंगी कणों की भाँति संस्कृति समन्वय के प्राचीन तथ्य जब चमक कर दृष्टिपथ में आ जाते हैं तो उनसे मन को विलक्षण आनन्द प्राप्त होता है और इस महती संस्कृति के प्रति श्रद्धा बढ़ती है एवं उस जीवन क्रम के प्रति हम आस्थावान् बनते हैं जिसकी श्वास-प्रश्वास में, समवाय और समन्वय में मेलजोल और स्वच्छन्दता की प्राणवायु क्रियाशील रही है। भारतीय संस्कृति सभी विभिन्न तत्त्वों का संग्रह करती है, निराकारण जैसे उसे सुहाता ही नहीं। नदी, वृक्ष, पर्वत, यक्ष, नाग, देव, भूमि आदि अनन्त देवी-देवताओं की पूजा-मान्यता को स्वीकार करती हुई आगे बढ़ी है। निषाद जाति के नाग और यक्ष, द्रविड़ों के शिव और आर्यों के देव एक दूसरे से कंधा मिलाकर भारतीय संस्कृति के गोपाल-गूजरी रास में एक साथ नृत्य करते हुए देखे जा सकते हैं।

इस अनुपम सत्य की ओर कितनी ही बार पहले भी मेरा ध्यान गया था, किन्तु नवम्बर १९५१ से काशी विश्वविद्यालय में आने के बाद इस विषय की अधिकाधिक लोक साक्षी सामग्री मेरे दृष्टिपथ में आती चली गई। यहाँ विश्वविद्यालय में प्राचीन यक्ष पूजा के कितने ही प्रमाण जीते-जागते मिले। काशी में बीर-बरह्म की पूजा और मान्यता अभी तक चालू है। यह प्राचीन यक्ष पूजा का ही दूसरा नाम है। अथर्ववेद

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में यक्ष को ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म की अपराजिता पुरी में महाकाय यक्ष का निवास है। उस ब्रह्म या यक्ष के पास अमृत है, यही मान्यता का मुख्य कारण है। केन उपनिषद् के अनुसार ब्रह्म देवों के समक्ष यक्ष रूप में प्रकट हुआ। देवी भागवत में कहानी का रूप यह है कि देवों और असुरों के युद्ध में देवता जीत गए तो उन्होंने अभिमान किया। तब ब्रह्म यक्ष का रूप धरकर देवों के सामने आया। देवता उसे न पहिचान सके। तब अग्नि, वायु, वरुण आदि देवों ने उसकी शक्ति की परीक्षा ली, पर सब असफल रहे। तब उस यक्ष ने कहा कि तुम्हारी शक्ति कुछ नहीं, शक्ति तो मैं देता हूँ। उपनिषद् की कहानी का ठाट भी लगभग यही है। वैदिक साहित्य, सूत्र ग्रन्थ, रामायण, महाभारत, बौद्ध, और जैन साहित्य और इन धर्मों से सम्बन्धित प्राचीन कला, इन सब में यक्षों की मान्यता और पूजा के वर्णन भरे हुए हैं। बीर और ब्रह्म ये दोनों शब्द यक्षों के लिये ही 'प्रयुक्त होने लगे। मध्यकालीन साहित्य बावन बीरों के उल्लेखों से भरा हुआ है। काशी में और विश्वविद्यालय की सीमा के भीतर भी बीरों के कितने ही चौरे या अस्थान हैं। इस प्रकार यक्ष पूजा का साक्षात् प्रमाण लोक जीवन में देखकर अत्यन्त आश्चर्य और कुतूहल हुआ। आज भी यक्षों के इन स्थानों पर पूजा और मान्यता बराबर होती है। न केवल काशी, बल्कि आसपास के सभी जिलों में बीर ब्रह्म की पूजा चालू है। १६–४–५२ को सेवापुरी से लौटते हुए श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बताया कि उनके बलिया जिले के गाँव-गाँव में बरह्म का चौरा पाया जाता है जिस मिट्टी का ढूहा जैसा बना रहता है। बीर की पूजा भी होती है। वस्तुतः महावीर को दो तरह पूजते हैं। एक मन्दिर में हनुमान् की मूर्ति के रूप में और दूसरे ढूहे या स्तूप के रूप में। वह दूसरी पूजा वीर या यक्ष पूजा ही है। बड़े यक्ष का नाम ही महावीर-हुआ। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में दीवाली के दिन जिसे कामसूत्र में यक्षरात्रि कहा गया है, महावीर का जन्मदिन माना जाता है और प्रत्येक घर में रोट का चूर्मा बनाकर उसकी पूजा की जाती है। यह यक्ष पूजा का ही अवशेष है। पूर्वी जिलों में आज भी यक्ष पूजा में इस प्रकार का प्रसाद बनाया जाता है। हमें विदित है कि यक्षों के नाम से पहले छोटे और बड़े विशेषण जोड़ दिए जाते थे। भारहुत की कला में बहुत से यक्षों के नाम मिले हैं। उनमें एक महाकोका और दूसरी चुल्लकोका देवता है। इन्हें ही छोटी-बड़ी कोका यक्षी समझना चाहिए। काशी में ही एक प्रसिद्ध बीर लहुराबीर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ही जिसका अर्थ है छोटा बीर। लहुरा नाम से ही ज्ञात होता है कि चुलकोका महाकोका के जोड़े की तरह काशी में कोई वड़ा बीर भी अवश्य था। काशी में बुल्ला नाला प्रसिद्ध है। संस्कृत विपुल से बिउल बुल्ला बना है। विपुल चन्द्र का ही अपभ्रंश रूप वूलचन्द्र है। बुल्लानाला यह नाम बुल्ला बीर के नाम पड़ा हुआ ज्ञात होता है। इसी के आस-पास कहीं बुल्ला बीर का थान रहा होगा। काशी में और भी बीरों के कितने ही अस्थान हैं जिनमें भेलूपुरा का डोंड़िया बीर प्रसिद्ध है। ये सब प्राचीन यक्ष पूजा के ही अवशिष्ट रूप हैं।

१७–४–५२ को श्री व्यौहार राजेन्द्र सिंह से बीर-बरह्म की चर्चा हुई। उन्होंने बताया कि उनके यहाँ मध्य प्रदेश में बरह्मदेव या बरह्म बाबा की पूजा होती है। बरह्म प्रायः करके झाड़ पर रहता है। बीर का भी झाड़ होता है या चबूतरा बनाया जाता है। यह वृक्ष प्रायः पीपल का होता है जिस पर बरह्म या ब्रह्म या यक्ष का स्थान होता है। उन्होंने एक विलक्षण बात की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया कि गोस्वामी जी ने भी विनय-पत्रिका में महावीर की आराधना के रूपक का वर्णन किया है—

"बीर महा अवराधिए साधिए सिधि होय,
सकल काम पूरन करे जानें सब कोय। इत्यादि"

बड़े वीर की आराधना करनी चाहिए, उसके साधने से सिद्धि मिलती है और सब कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। शीघ्र उस पूजा का उपदेश लेना चाहिए। उसका बीज मंत्र जैसे शिव जपते हैं, जपना चाहिए। पानी से तर्पण द्वारा, घी से, समिधा से, अग्नि से और बलि कर्म से उसकी पूजा होती है। वह वीर उच्चाटन, वशीकरण और मारण करता है एवं सम्पदा का आकर्षण करता है। जो इस बड़े वीर को इस भाँति पूजता है, वह रघुनाथ जी की प्राप्ति के मार्ग में बढ़ जाता है (विनय पत्रिका १०८)। अवश्य ही इस वर्णन में जिन अभिप्रायों का उल्लेख किया गया है वे लोक-प्रचलित बीर पूजा से ही लिए गए हैं। महावीर की वीररूप में जो पूजा पूर्वी जिलों में प्रचलित है, उसका ज्ञान गोस्वामी जी को अवश्य रहा होगा।

उसी दिन गरौठा से श्रीकृष्णानन्द गुप्त आए। उनसे भी बीर-बरह्म पूजा के विषय में चर्चा हुई। उन्होंने पहले तो बताया कि यह पूजा हमारें यहाँ नहीं होती, पुनः बोले कि हाँ हमारे यहाँ बीर की पूरा होती है, बीर का चबूतरा होता है और 'बीर' लोगों के सिर भी आते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बीर-पूजा के लोक-गीत गाए जाते हैं। सम्भवतः बीर और बरह्म की पूजा भी होती है। श्री परमेश्वरीलाल गुप्त ने बताया कि बीर-बरह्म की पूजा आजमगढ़ जिले में भी प्रचलित है। श्री हरिहर प्रसाद गुप्त ने, जिन्होंने लोक-साहित्य पर काम किया है, कहा कि उनके जौनपुर जिले में भी बीर-बरह्म पूजे जाते हैं।

संयोग से २०-४-५२ को भारतीय संस्कृति के अद्भुत विद्वान् श्री सुखलाल संघवी विश्वविद्यालय पधारे। उनसे बीर-बरह्म की चर्चा आई। उन्होंने बताया कि जैन मत में भी ५२ वीरों की साधना की जाती है। पुराने ग्रन्थों में जक्ख-चेइय या जक्खायतन का बराबर उल्लेख आता है. वस्तुतः महावीर के ठहरने के सबसे उपयुक्त स्थान जक्खायतन ही थे। बीरों के बहुत से गीत भी बने हुए हैं, जिन्हें गुजरात में शिलोगो (संस्कृत श्लोक) या छन्द कहते हैं। ५२ बीरों के अनेकों शिलोगो मिलेंगे, पहले मुझे बीरों के सैकड़ों शिलोगो या छन्द बचपन के सुने हुए याद थे। वीरों के साथ ५६ जोगिनी भी पूजी जाती हैं। ऐसा विश्वास है कि जैन मन्दिर में यक्ष-यक्षिणी की मूर्ति के बिना तीर्थंकर मन्दिर की रक्षा नहीं हो सकती। ऐसी कथाएँ भी आती हैं, कि यक्ष के उपद्रव करने पर उसकी शान्ति कराई गई। भगवान् महावीर का जन्म-जात नाम वर्द्धमान था। जब उनकी प्रसिद्धि हुई और मान्यता बढ़ी तो वे बड़े वीर या महावीर कहलाने लगे। हो सकता है कि महावीर शब्द वीर शब्दावली से लिया गया हो। श्री परमेश्वरीलाल जी ने कहा कि हमारी बोली में में भी लोकोक्ति है कि 'ऐसा करूँ तो बावन वीर कहाऊँ"। ज्ञात होता है कि पहले किसी समय ५२ वीरों के प्रमुख स्थानों की गिनती कर ली गई थी जैसी १०८ देवी के पीठों की। 'पृथ्वीराज रासो' में दी हुई ५२ वीरों की सूची में कई नाम ऐसे हैं जो प्राचीन परम्परा से सम्बन्धित जान पड़ते हैं जैसे मानिक, रुद्र, समुद्रतरन, समुद्र शोक, इन्द्रवीर, जमवीर, सहस्त्रांग, नरसिंह, देवाग्नि, क्षेत्रपाल, लोहभञ्जन आदि। इस सूची का मानिक रुद्र अवश्य ही प्राचीन मणिभद्र यक्ष है, जिसकी मान्यता किसी समय मथुरा और प्राचीन पद्मावती (ग्वालियर का पवाया) तक प्रचलित थी। मथुरा में परखम गाँव से माणिभद्र यक्ष की महाकाय मूर्ति मिलती है। बंगाल में मणिभद्र और माणिक वीर के रूप में आज भी पूजा जाता है। जिस प्रकार प्राचीन काल में माणिभद्र सार्थवाहों का देवता था वैसे ही माणिक पीर को मछुए-मल्लाह अपना देवता मानते हैं। महाभारत के बन पर्व में नलोपाख्यान के अन्तर्गत एक बड़े सार्थ या

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्यापारिक काफिले के वेत्रवती नदी पार करने का वर्णन है; वहाँ कहा गया है कि उस सार्थ का ज्येष्ठ सार्थवाह और अन्य व्यापारी माणिभद्र यक्ष के भक्त थे।

आरम्भ में यक्षों के थान और अन्य देवों के थान खुले आकाश के नीचे होते थे। ये खुले थान चारदिवारी से भी घेर दिये जाते थे। इन थानों पर मूर्ति की प्रतिष्ठा नहीं होती थी किन्तु प्रतीक से रूपों में मिट्टी या ईंट का केवल एक थुहा बनाया जाता था। कुछ काल बाद यक्षों की विशालकाय मूर्तियाँ भी बनने लगीं और उसी परम्परा में आगे चलकर विष्णु, शिव और बुद्ध की मूर्तियाँ भी रची गईं लेकिन फिर भी जो थान की पूजा-विधि थी वह भी दो सहस्र वर्षों तक चालू रही।

आजकल लोक में पञ्चपीरों की पूजा कहीं-कहीं प्रचलित है। वस्तुतः मुसलमानी प्रभाव से प्राचीन पञ्चवीर शब्द का ही रूप बदल कर पञ्चपीर हो गया। वैश्रवण, माणिभद्र, पूर्णभद्र आदि अनेक यक्ष प्राचीन काल में प्रसिद्ध थे, उनकी नामावली महाभारत के सभापर्व के अन्तर्गत कुबेर की सभा के वर्णन में, और बौद्ध ग्रन्थ दीघनिकाय के आटानाटीय सुत्तन्त में पाई जाती है। स्वाभाविक है कि उस समय जो बहुत से यक्षों की मान्यता थी, उसमें कुछ प्रधान रूप से उतरा आए हों और इसी आधार से •पञ्चवीर यह शब्द लोक में प्रचलित हुआ हो। मथुरा के प्रथम शती पूर्व के एक शिलालेख में 'वृष्णीनां पञ्च वीराणां' अर्थात् वृष्णियों के पञ्चवीरों का उल्लेख है। लोक में जो पञ्चवीरों या पाँच यक्षों की पूजा प्रचलित थी, उसी के ढंग पर वृष्णियों के भी पाँच नायक वीरों को चुनकर वृष्णि पञ्चवीर यह संज्ञा दी गई। दशकुमार चरित में एक स्थान पर पञ्चवीर गोष्ठ का उल्लेख है। टीकाकार के अनुसार देहाती मंडली या जमावड़े के लिए 'पञ्चवीर गोष्ठ शब्द' प्रचलित था [तत्पञ्च वीर गोष्ठन्तु यत्तु जानपदं सदा] पञ्चवीर में जो वीर शब्द है वह यक्षवाची है। पाँच यक्षों के थान की संज्ञा पञ्चवीर हुई और वहाँ जो गोठ जमती थी वह पञ्चवीर गोष्ठ कहलाई। वीर = पीर इस समीकरण को स्वीकर कर लेने से प्राचीन धार्मिक इतिहास के बहुत से भूले हुए सूत्र लगने लगते हैं। श्री पं० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी और श्री पं० सुखलाल जी संघवी दोनों विद्वानों ने इस पहिचान को स्वीकार किया। द्विवेदीजी के अनुसार चूलिका पैशाची या पंजाबी में बीर का पीर उच्चारण वहुत सम्भाव्य हैं। मुसलमान पंजाब की तरफ से आते हुए यह उच्चारण अपने साथ पूर्व की ओर लेते गये। श्री डॉ० पी० एल०

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वैद्य से ज्ञात हुआ कि महाराष्ट्र में भी वीर पूजा प्रचलित है। दर्शन के अध्यापक श्री हरिदास भट्टाचार्य ने बतलाया कि बंगाल में वीर पूजा बहुत अधिक पाई जाती है। मानिक पीर का उल्लेख ऊपर आ चुका है इसी प्रकार सत्य पीर की पूजा भी चालू हैं। हमारे सहयोगी श्री अवध-किशोर नारायण ने बताया कि मगही क्षेत्र (गया जिले) में गाँव-गाँव में बरह्म-थान या चबूतरे होते हैं। आजकल वहाँ पूजा होती है। प्राय: उनके पास एक-एक वृक्ष होता है। गाँव में प्रवेश करने के स्थान के पास ही बरह्म-देव का स्थान बनाया जाता है। बरह्म-देव के बहुत से पूजा-गीत भी वहाँ पर हैं। बलियाँ की तरफ बीरों की पूजा स्थान या बरह्म-स्थान को केवल 'अस्थान' कहते हैं।

४-५-५२ को प्रातःकाल भ्रमण करते हुए विश्वविद्यालय में ही यक्ष-पूजा सम्बन्धी अनमोल नई जानकारी प्राप्त हुई। मार्ग में एक गाँववाला मिला जो सिर पर साढ़े सात पसेरी कुम्हड़ों का झौआ उठाये सट्टी जा रहा था। एक जगह बीर का थान आया तो मैंने पूछा कि यह क्या है? उसने कहा कि मन्दिर है। मैंने पूछा कि इसके अन्दर क्या है, तो कहा कि डीह है। मैंने कहा—'क्या यह थान है?' उसने कहा—'हाँ, अस्थान है।' पहिली बार मन्दिर कहते हुए उसने नई शब्दावली का प्रयोग किया था, पर अब वह अपनी शब्दावली पर आ गया था, क्योंकि उसने मुझे भी शुद्ध करके थान न कहकर 'अस्थान' ही कहा। मैंने फिर पूछा—इस डीह का नाम क्या है? अब वह और भी अधिक अपने गाँव की मनो-भूमि में आ गया था। मैंने पूछा यही अकेला बीर है या और भी हैं, उसने कहा—और भी हैं, जैसे कर्मन वीर, कोट माई। मैंने पूछा, कर्मन-बीर कहाँ है? बोला, वहीं ऊख के खेत के पास! मैंने इस जगह को सन् १९२५ में विश्वविद्यालय में पढ़ते समय देखा था। जब हम बहुत से छात्र अपना घुमक्कड़ी शिक्षा दल बनाकर खेतों में निकल जाते थे, तब मैंने इसे शिव मन्दिर समझ कर सन्तोष कर लिया था। उसके बाद पुन: अबकी बार विश्वविद्यालय में लौटकर प्रातःकाल के लम्बे चक्करों में प्राय: अँतरे-खोतरे उस स्थान के पास से निकलता था, पर उसे शिव का मन्दिर ही समझता रहा। अब जान पड़ा कि यह कर्मनवीर कोई यक्ष है जो सम्भवतः हजारों वर्षों से आसन मारे बैठे हैं। लोग आए और गए, आसमान घूमता गया, पर कर्मनवीर टस से मस न हुए। वैसे ही भक्तों का पुजापा लेते रहे हैं। चाहे जितने धर्म सुधार हो जायँ, मार्क-ण्डेय की तरह उनकी लम्बी आयु के लिए भविष्य में भी मुझे कुछ खटका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं दीखता। कुम्हड़े वाला साथ-साथ चला आ रहा था। मैंने पूछा क्या मानिक बीर भी कोई है ? उसने कहा कि हाँ, मानिकबीर भी हैं। जब बहिया या मारी आती है तब उसकी पूजा होती है। यह मानिकबीर किसी समय मुड्ढ देवता था जो यक्षों के प्रधान माणिभद्र यक्ष का बचाखूचा रूप हैं। ग्वालियर के पास पवाया (पद्मावती) के खेत में मणिभद्र के भक्तों ने कहा है कि वे लोग गर्भ सुखित मनोवृत्ति से अपनी गोष्ठी में मणिभद्र की पूजा करते थे। 'अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम' की फक्कड़ मनोवृत्ति के लिए पाणिनि के 'पात्रे समितादयः' सूत्र में (२-१४८) गर्भेतृप्त, गेहेतृप्त आदि फड़कते हुए शब्द दिए हैं। इन्हीं का सगोती यह गर्भसुखित शब्द था। माणिभद्र यक्ष के पुजारी इसी मनोवृत्ति के भक्त थे। वस्तुतः प्राचीनतम काल में एक मङ्गलमणि या भद्रमणि की पूजा प्रचलित थी जिसे महाभारत में युधिष्ठिर के कोष में दिव्यमणि कहा गया है। उस मणि के कृपा से अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती थीं, उनका विस्तृत उल्लेख पूर्णक यक्ष की जातक कहानी में आया है। उसी प्रकार की मंगलप्रद मणि का अधिष्ठातृ देवता मणिभद्र यक्ष प्रतीत होता है। उसके भक्तों में गर्भ-सुखित निश्चिन्त वृत्ति का होना स्वाभाविक था।

लोक-संस्कृति सचमुच जयशालिनी है। उसकी गोद में अमृत है। कोई संस्था विश्वास या नाम यहाँ मरता हुआ नहीं दीखता। सब लोक की प्राणधारा के प्रवाह में बहते रहते हैं। मैंने उसी व्यक्ति से कहा— भाई कर्मनबीर तो मैंने देखा है, कोट साई कहाँ है ? उसने एक ऊँचे टीले की ओर इशारा करते हुए मार्ग बता दिया और कहा कि ये कोट माई बड़ी ही जगता माई हैं अर्थात् बहुत चमत्कार युक्त हैं। सचमुच कोट माई का चमत्कार मेरे ध्यान में आ गया। कोट माई प्राचीन कोट्टवी या कोटवी देवी है, जिसका अम्बिका के रूप में तमिल देश में कभी प्रचार था। कोट्टवै दक्षिण देश की सबसे वड़ी देवी थी। वाण ने हर्ष चरित में उसे कोटवी कहा है। ज्ञात होता है दक्षिण की कोट्टवै महानग्नी मातृ देवी थीं, जिसे अंग्रेजी में ग्रेट गोडैसा या मेग्ना माटेर कहा जाता है। क्या अनुमान हो सकता था कि दक्षिण की कोट्टवै कोट माई के रूप में विश्वविद्यालय के ही एक टीले पर प्रतिष्टापित मिलेंगी ? किन्तु यही इस देश की लोकवार्ता की शाश्वत विजय है। यहाँ प्रत्येक संस्था चिरंजीवी है। हिमालय के अलमोड़ा जिसे से लोहाघाट से १२ मील की दूरी पर कोटलगढ़ स्थान है। वहाँ की किवदन्ती है, कि यह कोट्टवी का गढ़ था।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कोट्टवी बाणासुर की माता थी। उसका आधा शरीर कवच से ढका हुआ और नीचे का आधा नंगा माना जाता है। कथा है कि एक बार महाबलि के पुत्र बाणासुर दैत्य का विष्णु से युद्ध हुआ। जितने असुर मारे जाते उनसे अधिक उत्पन्न हो जाते। तब देवों के प्रयत्न से महाकाली का जन्म हुआ। उसने असुरों का और कोट्टवी का बध किया। कोटलगढ़ का अर्थ है—नंगी स्त्री का गढ़ या वासस्थान (अमृत बाजार पत्रिका, १९ मई १९५२, हिल सप्लीमेंट, पृ० ३)। इस सूचना से यह परिणाम निकलता है कि दक्षिण की कोट्टवै की पूजा हिमालय पर्वत के अभ्यन्तर तक में प्रचलित थी। लोक में इसके और भी व्यापक प्रमाण मिलने चाहिए।

६-५-५२ को प्रातः भ्रमण के समय कर्मनबीर के पास पहुँचने पर सामने गाँव से आते हुए दो आदमी दिखाई दिए। उन्होंने बीर के दर्शन किए। उनसे बात चलाई, यह क्या है ? बोले कर्मनबोर का स्थान है। वहीं बोर के स्थान के आगे एक चबूतरा था। मैंने पूछा, क्या यह भी बीर का स्थान है ? उन्होंने कहा, नहीं। यह अखाड़ा है। मैंने पूछा, और भी क्या आसपास कोई बीर है ? उन्होंने कहा, हाँ हमारे गाँव टिकारी में खोराबीर हैं, और देवी बिन्ध्या माई हैं। बातचीत का सिलसिला जारी रखते हुए मैंने पूछा—बीर और शिवलिंग में क्या अन्तर है ? उनमें से एक व्यक्ति का इस विषय में बिल्कुल स्पष्ट मत था। उसने बताया कि हर गाँव में एक वीर और एक देवी का होना जरूरी है। बीर और देवी का मन्दिर अलग-अलग होता है। शिव का मन्दिर हर गाँव में हो, यह जरूरी नहीं। दस-पाँच गाँव में एक शिवलिंग का मन्दिर रहता है, लेकिन ठाकुरों की तरह बीर हर गाँव में होता है। कहा है—

"गाँव गांव का ठाकुर,
गांव गांव का बीर।"

शिवलिंग और बीर में दूसरा भेद यह है कि शिव की पिण्डी छोटी और ऊपर से गोल होती है लेकिन बीर का थूहा बड़ा और नोकदार होता है। विश्वविद्यालय में कर्मनबीर दो हैं। दूसरे कर्मनबीर का थूहा ५ फीट ऊँचा और नीचे के पेटे में ७।। फुट है। ऊपर की ओर वह नुकीला उठा हुआ है। यह यहाँ के सब बीरों में ऊँची मूर्ति है। तीसरा भेद यह है कि शिव के मन्दिर में गणेश, पार्वती आदि और भी मूर्तियाँ हो सकती हैं, लेकिन बीर के अस्थान पर बीर के अलावा और किसी देवता की मूर्ति नहीं रहती। उसकी इस व्याख्या से पहिली ही बार मुझे ग्राम देवता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के रूप में बीर की ठीक स्थिति, परम्परा और महत्त्व का पता चला और मेरे मन में यह बात साफ हो गई कि बीर पूजा की धार्मिक तह और शिव पूजा की तह दोनों अलग-अलग हैं। लोक में पहले बीर-पूजा छाई हुई थी, उसके ऊपर शिव पूजा का खोल चढ़ा।

इसी दिन सायंकाल के समय हमारे यहाँ काम करनेवाले पं० तिलक धर ने लंका पर सुना कि काशी में एक डौंड़िया बीर और एक बुल्ला बीर हैं। पंडित जी के यह कहने पर कि बुल्ला बीर तो विश्वविद्यालय में है, उसने उत्तर दिया कि अस्सी के इस पार के बीर असली हैं, उसके बाहर के नकली हैं। उसकी यह बात जो लोक परम्परा में चली आई है ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इससे मत्स्य पुराण की उस अनुश्रुति का समर्थन होता है, जिसमें कहा है, कि काशी में पहले यक्ष-पूजा प्रचलित थी, बाद में यहाँ शिव-पूजा का अड्डा जमा। जब शिव के भक्तों ने काशी पर अधिकार कर लिया तब काशी के यक्ष काशी के बाहर चले गए। लिखा है किसी समय शिव के भक्तों में जो काशी में बाहर से आए थे और यक्ष के अनुयायियों में जो पहले थे, झगड़ा उठा। इस झगड़े में शिव ने बीच-बचाव किया और निर्णय दिया कि शिव के गण काशी में रहें और यक्ष काशी छोड़कर बाहर चले जायँ। तब यक्ष भक्तों ने अपने स्थान बाहर बना लिए, पर जो स्थान काशी में बने हुए थे, उन्हें उखाड़ना सम्भव नहीं था, अतः वे भी बचे रह गए और काशी में आजतक लोक में यह बात चली आई कि काशी से बाहर के बीर हैं वे असली नहीं। असली तो काशी की सीमा में रहनेवाले बीर ही हैं। लहुरा बीर, बुल्ला बीर, डौंड़िया बीर उसी परम्परा के प्रतिनिधि हैं। विश्वविद्यालय के बाहर पंचक्रोशी के हनुमान मन्दिर के पास दैतराबीर का मन्दिर है। यह बीर अवश्य ही किसी दैत्य या क्रूर यक्ष का प्रतिनिधि होना चाहिए। श्री परमेश्वरीलाल जी से ज्ञात हुआ कि चेतगंज में भी दैतरा बाबा का थान है। इसका आशय यह है, कि जितने बीर काशी में हैं, उतने ही बीर काशी के बाहर भी होने चाहिएँ। काशी के बाहर यक्ष पूजा का सबसे बड़ा स्थान हरसू बरह्म है, जो प्राचीन हरि-केशव यक्ष का ही प्रतिनिधि जान पड़ता है। उसे आज तक राष्ट्रपति माना जाता है। टिकारी गाँव में जिस खोरा बीर का नाम गाँववाले ने उस दिन बताया था उसका आभास शान्ति पर्व (८-३।५३) के खोरक नाम में मिलता है—'खोरकः सौरभेयाणाम्' अर्थात् शिव का जो क्रोध ज्वर के रूप में प्रकट हुआ वह था नाना रूपधारी होकर चारों ओर फैल गया। बैलों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में वही खोरक कहलाया। खोरक रोग का नाम और लोक में वही बीर का नाम है। विश्वविद्यालय से नगर का जानेवाले मार्ग पर दाहिनो ओर बीर का नाम बरह्म बीर है। इस नाम में यक्ष वाची प्राचीन ब्रह्म शब्द सुरक्षित रह गया है। काशो के बीरों की सूची में डौंड़िया बीर ध्यान देने योग्य हैं। प्राचीन लिच्छवियों की राजधानी वैशाली के बाहर घंटा यक्ष का चैत्य था। किसी बाहरी व्यक्ति के अनधिकृत या चोरी से नगर प्रवेश करने पर वह यक्ष घंटा बजाकर लिच्छवियों को सावधान कर देता था। काशी की प्राचीन सीमा पर कुछ ऐसा ही कार्य इस डौंड़िया बीर का था। बहुत से बीरों के नाम मनुष्यों के नामों पर हैं। वस्तुतः वैदिक देव और लोक के बीरों में यही अन्तर था कि यक्ष पुरुषप्रकृति देव थे, अर्थात् उनके पीछे असली प्राकृतिक या आदर्श मनुष्य का था। वायु पुराण में वृष्णि पंचवोरों को पुरुष प्राकृतिक देव कहा गया है। अपनी बुद्ध गया की यात्रा में मुझे ज्ञात हुआ कि वहाँ बोध गया के पास ही बरह्म वीर का थान है। और भी मगध के गाँव-गाँव में बरह्म के थान हैं, जिनकी पूजा और मान्यता अभी भी जारी है[1]।

बीर बरह्म की पूजा का क्षेत्र आज भी बंगाल से राजस्थान, महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश तक फैला हुआ है। इसके प्रमाण पूछ-ताछ करने पर मित्रों से मिलते गए। यदि हम लोकवार्ता साहित्य के अध्ययन को वैज्ञानिक पद्धति पर संगठित कर सकें तो इस विषय में सुस्पष्ट और निश्चित जानकारी की सम्भावना है जिसके द्वारा इस सामग्री को प्राचीन यक्ष-पूजा की परम्परा के साथ जोड़ना और भी अधिक सम्भव हो सकेगा। यहाँ विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक श्री मेनन द्वारा यह जानकर प्रसन्नता हुई कि केरल और तमिलनाड में भी प्राचीन यक्ष और यक्षियों की पूजा की प्राच्य परम्परा अभी तक विद्यमान है और प्रायः वह हरेक गाँव में फैली हुई है। इस सम्बन्ध की सामग्री का संकलन दक्षिण भारत के जनपदीय कार्यकर्ताओं को करना चाहिए।

यक्ष-पूजा के साथ यक्ष प्रश्न—यक्षों से प्रश्न पूछने की प्रथा भी थी जिसे प्रश्न-व्याकरण भी कहते थे। आज भी यक्ष या बीर जब किसी के सिर पर आ जाता है तो चट चारों ओर से प्रश्नों की झड़ी लग जाती है। बता, तू कौन है, कहाँ से आया है, और भी लोग जो-जो

१. इस सूचना के लिये मैं निर्माण-विभाग विश्राम गृह के चौकीदार श्री राम-औतार का अनुगृहीत हूँ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चाहते हैं, पूछते हैं। यक्ष-पूजा और मान्यता का यह आवश्यक अंग था। महाभारत में युधिष्ठिर और यक्ष के संवाद रूप में जो प्रश्नोत्तारी दी हुई है उसमें यक्ष पूछनेवाला है और धर्म के प्रतिनिधि युधिष्ठिर उत्तार देनेवाले हैं। लेकिन लोग पूछें, यक्ष उत्तार दें, वह भी एक परम्परा थी जो वैदिक काल तक पाई जाती है। महाभारत की यक्ष प्रश्नोत्तारी लोक साहित्य का अभिन्न अंग थी। वहीं से वेदव्यास ने उसका संकलन किया था। यजुर्वेद के ब्रह्मोद्य प्रकरण में होता और राजमहिषी के रूप में जो प्रश्नोत्तार दिये हुए हैं। उनमें से कुछ वही हैं, जिन्हें व्यासजी ने यक्ष युधिष्ठिर प्रश्नोत्तारी में स्थान दिया है। वैदिक साहित्य के साथ लोक साहित्य के मेल का यह विलक्षण उदाहरण है। यह आश्चर्य तब और भी बढ़ जाता है जब हम देखते हैं कि कुरु जनपद के लोक साहित्य की परम्परा में जिसे मल्होर या गाहा और पल्याया कहा जाता है, उसमे भी यक्ष प्रश्नों से मिलते-जुलते बोल पाए जाते हैं।

'ए जी कौन जगत में एक है, ए जी कौन जगत मे जागता ?' इस प्रश्न के उत्तार में,

'ए जी राम जगत में एक है, ए जी धर्म जगत में जागता।'

महारभारत और यजुर्वेद में इसी प्रश्न को यों पूछा गया है —

'किं स्विदेकाकी चरति किं स्विदाजायते पुनः।'

'सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः।'

यदि यक्षों के गीत, बीर पूजा के गीत और रशि लोगों का पर्याप्त रूप में संग्रह किया जाय तो आशा है उनके अध्ययन से और भी प्राचीन साहित्य अभिप्राय खुलेंगे।

श्री डा० आनन्दकुमार स्वामी ने सर्वप्रथम पूजा की व्यापकता पर प्रामाणिक ढंग से ध्यान दिलाया था। बौद्ध, जैन और ब्राह्मण साहित्य में इस सम्बन्ध की जो सामग्री है, उसके आधार पर उन्होंने यक्ष नामक नामक ग्रन्थ लिखा, जिसका पहला भाग वाशिंगटन के स्मिथसोमियन इन्स्टीटच्यूशन से १९२८ में और दूसरा १९३१ में प्रकाशित हुआ। उससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में बड़े-बड़े नगरों के पास प्रसिद्ध यक्ष-मन्दिर थे, जैसे कपिलवस्तु में शाक्य वर्धन यक्ष का मन्दिर था, जहाँ बालक सिद्धार्थ के माता-पिता बच्चे को लेकर पूजा के लिये गए थे। वैशाली के बाहर विशाल नामक यक्ष का मन्दिर था। पाटलिपुत्र में पुरगा नामक यक्षी का मन्दिर था। गया में शुचिलोम यक्ष का मन्दिर था। आज भी लोक में इन स्थानों के लिये 'भौन' शब्द प्रचलित है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जैन ग्रन्थ सूर्य प्रज्ञप्ति के अनुसार मिथिला नगरी से बाहर मणिभद्द नामक जक्ख का चैत्य था। औपपातिक सूत्र के अनुसार चम्पा (वर्तमान भागलपुर) के पास पूर्णभद्र यक्ष का मन्दिर था जिसमें पूजा के लिये अमीर गरीब सब इकट्ठे होते और क्षत्र, ध्वजा, घंटी-घंटे, मोरछल, चन्दन, पूर्णघट, सुगन्ध, लाल चन्दन, पुष्प आदि से धूमधाम की पूजा होती थी। वहीं मेले में नट, कला करनेवाले, गाजे-बाजेवाले, तमाशेवाले, पहलवान, कथक्कड़, पवाड़ा गानेवाले, भाँति-भाँति के लोगों का मेला लगता था। इस तरह के उत्सव को यात्रा कहते थे। उसी का वर्तमान हिन्दी रूप जात (प्राकृतिक जत्त) अभी तक बच गया है। लोक में चाहे अन्य कोई वस्तु सुरक्षित रहे या न रहे, मेले और उत्सव बराबर जीवित रहते हैं। कालान्तर के प्रभाव उनके स्वरूप में कुछ हेर-फेर हो जाता है। हमारा अनुमान है कि नागों और यक्षों और देवियों के जो मेले प्राचीन काल में लगते थे और जो प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थान विविध जनपदों में थे, वे आज भी किसी न किसी रूप में वहाँ मिलने चाहिए। उदाहरण के लिये महाभारत में राजगृह के पास मणिनाग नामक नाग के चैत्य का उल्लेख आया है। मणियार मठ के नाम से राजगृह में आज तक सर्प-पूजा की वह परम्परा चली आती है। भरतपुर से तीन मील दूर पर नोह गाँव के एक टीले के पास मौर्यकालीन महाकाय यक्ष मूर्त्ति की प्राप्ति हमें १९३३ में हुई थी, उसे तबतक गाँववाले जखैया के नाम से पूजते थे। आज तक भो वह मूर्त्ति वहाँ पुजन्त में है। भारतीय लोक जीवन को कहीं पर भी खुर्च कर देखा जाय तो उसके नीचे प्राचीनता के बहुत से पर्त्त निकलने लगते हैं। समाज किसी भी संस्था या पूजा-पद्धति के विषय में सशंक नहीं होता, किसी का बलपूर्वक निराकरण नहीं करता। प्रत्येक धार्मिक संस्था अपने रस में जीवित्त रहती है और अपने रस में घटती-बढ़ती या रूप बदलती हुई दूसरी संस्थाओं में घुल मिल जाती है। असम प्रान्त से जहाँ प्राचीन भू-देवी की पूजा कामाख्या के नाम से प्रचलित है, वह काठियावाड़, आन्ध्र और केरल तक निषाद, शबर, मुण्डा, किरात, द्रविड़, आर्य आदि अनेक धार्मिक निष्ठाएँ प्रचलित रही हैं, उन्होंने एक दूसरे को प्रभावित किया है। कामाख्या देवी की पूजा का वर्णन करने वाले योगिनी तन्त्र में वहाँ के उत्सव को स्पष्ट ही शबरोत्सव कहा गया जंगली जातियों के शिथिल नैतिक आचार भी प्रचलित थे। उसी ग्रन्थ में स्थानीय धार्मिक मान्यताओं को कैरातज धर्म (योगिनी तन्त्र २-९-९) कहा गया है जो बिल्कुल ठीक है। किरात (अंग्रेजी मौनख्मेर) जातियों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का निवास उत्तर प्रदेश में आज तक है, वहाँ उनके धर्म का प्रचार एवं प्रभाव स्वाभाविक था। आर्य संस्कृति ने स्थानीय संस्कृतियों के प्रभाव में आकर उन्हें अनेक भाँति से प्रभावित किया है, और यथासम्भव अपने नैतिक सौरभ से सुवासित किया है। परिणाम स्वरूप स्वयं भी वह उन संस्कृतियों से प्रभावित हुई है। उदाहरणार्थ यक्ष-धर्म की जो पूजा-पद्धति थीं उसे भागवत धर्म में स्वीकार किया गया। इसे ही गीता में "पत्रं पुष्पं फलं तोयं" द्वारा देव-पूजन कहा गया। प्राचीन यक्ष-पूजा में तीन अंग आवश्यक थे। वाद्य, पुष्प और बलि। इनके अन्त में प्रसाद वितरण होता था। पूजन की यह विधि यज्ञ विधि से भिन्न थी। जिस प्रकार यक्ष मूर्तियों से विष्णु मूर्तियों का विकास हुआ और पञ्चवीर पूजा से वृष्णि पञ्चवीरा की उत्पत्ति हुई, उसी प्रकार यक्ष दैत्यों की पूजा-विधि भी भागवतों द्वारा अपना ली गई। उसी का प्रमाण गीता में वर्णित "पत्रं पुष्पं फलं तोयं" है। इनमें से कोई अंग वैदिक यज्ञ विधि में आवश्यक नहीं। देखा जाय तो भागवतों में भी दोनों परम्पराएँ काफी देर तक चलती रहीं। परमसंहिता, अहिर्बुध्न्य संहिता आदि प्राचीन पंचरात्र संहिताओं में एक ओर भागवत धर्म के पूजन में वैदिक यज्ञों का भी अनुष्ठान और स्वीकृति है दूसरी ओर नृत्य, गीत, वादित्र, पत्र, पुष्प, फल, बलि आदि के द्वारा लौकिक पूजाविधि मान्य समझी गई और उसका सुविस्तृत उल्लेख किया गया है। इस प्रकार हिन्दू संस्कृति समन्वय के बीज मंत्र को लेकर आगे बढ़ी है। इसी बीजमंत्र से हिन्दू संस्कृति में उस अभयमुद्रा का जन्म हुआ जिसके कारण छोटी और बड़ी, ऊँची और नीची, सब संस्कृतियां एक परिवार की अंग बनी हुई हैं। गंगा की धारा में भरे हुए बालुकणों की भांति यहां आपस में सादृश्य और अभेद ही अधिक देखा जाता है और जीवन की संतत परिचालित गति भी उसी लक्ष्य की ओर बढ़ती हुई चली जाती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मराठी लोक गीतों में गौरी पूजन

—श्री राम सिंह यादव—

लोक-साहित्य ग्रामीण जीवन का अपना साहित्य होता है। प्रकृति के फल-फूल, पेड़-पौधे, आचार-विचार उसके उपादान हैं। मिट्टी में ही लोकगीतों का जन्म है। जन-जीवन के दैनन्दिन जीवन, प्रवाह, भाव तथा भाषा लोकगीतों के मध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। महाराष्ट्र के गाँवों का लोक-साहित्य भी विविध गीतों और आख्यायिकाओं से समृद्ध हैं। महाराष्ट्र की लोक-संस्कृति में त्योहारों, पर्वों और उत्सवों का बहुत महत्व है। यहाँ सदा कोई न कोई व्रत, पर्व, तीज-त्योहारों की धूमधाम रहती है।

यहाँ के (महाराष्ट्र) लोकगीतों में त्योहारों और उत्सवों के जो चित्र देखने को मिलते हैं वह अन्यत्र दुर्लभ है। गौरी पूजन एक विशिष्ट पर्व है जिसे महाराष्ट्र के गाँव-गाँव में, घर-घर में सुहागिन महिलाएँ आत्मीयता श्रद्धा और स्नेह से मनाती हैं। गौरी पूजन वस्तुतः पार्वती जी का पूजन है। भादो मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को विद्या एवं बुद्धि के अधिष्ठाता भगवान गणेशजी की स्थापना घर-घर में होती है। सम्पूर्ण वातावरण हर्ष-उल्लास एवं उमंग से भर जाता है। "गणपति बाप्पा मोरया" की आह्लादित ध्वनि से आकाश गूँजता है। बालक-बालिकाएँ, नर-नारी सभी मंगल देवता गणेशजी की जय-जयकार करते हैं। पुष्पमालाएँ, मोहनभोग, लड्डू, हरी-हरी दूब आदि से अलंकृत गणपतिजी की मूर्ति विद्यमान होती है। इसके ठीक तीसरे दिन सप्तमी को आदिशक्ति सुख-सुहाग की अधिष्ठात्री आराध्या देवी-गौरी पार्वती का पूजन दिवस आ जाता है।

पार्वती-गौरी को महालक्ष्मी के रूप में भी माना जाता है। महिलाओं, कुँआरियों, सुहागनों का यह पर्व भारत भर में असंख्य रमणियों द्वारा किसी न किसी रूप में मनाया जाता है जो हिन्दू जाति की स्त्रियों के लिए अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण है। पूजन-अर्चन विधि में भले ही अन्तर हो सकता है, लेकिन उनकी मनोकामना-हार्दिक भावनाओं-श्रद्धा में कदापि अन्तर नहीं है। सभी स्त्री मात्र की भावना एक ही रहती है—अर्थात् परिवार के सुख-समृद्धि की मनोकामना। पति के अमरत्व पाने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का वरदान। सुहाग से बढ़कर भारतोय नारो के लिए अधिक कुछ और नहीं।

महाराष्ट्र प्रान्त की नारी इसी भावना को लेकर श्रद्धा से नत होकर गौरी-गिरजा-पार्वती की पूजा करती है। उनका उल्लास देखने लायक होता है। इस पर्व के पीछे एक कथा इस प्रकार है—

एक बार दैत्य (दानवों) और देवताओं में संघर्ष छिड़ा। देवताओं में हाहाकार मचा हुआ था। देवताओं की रक्षा करनी जरूरी था। ऐसे संकट के समय में भयभीत नारियों ने अपने सौभाग्य (सुहाग) को बचाने हेतु गोराजी याने पार्वती जी की स्तुति की। अनुष्ठान और पूजन से उन्हें प्रसन्न किया। पार्वती जी खुश हो गयीं। परिणामस्वरूप पार्वती जी ने दानवों के प्रहार से देवतागण को मुक्त किया।

कहते हैं—तभी से महाराष्ट्र की नारियाँ भाद्रपक्ष शुक्ल अष्टमी को अपने पति सुहाग की रक्षार्थ मंगल कामना हेतु महालक्ष्मी याने गौराजी की पूजा करती हैं। एक अन्य किस्सा भी इस पुराण कथा के अतिरिक्त है—वह यह कि समस्त महाराष्ट्र में विश्वास है कि गौरा-पार्वती महालक्ष्मी के रूप में (दीवाली की तरह) डेढ़ दिन के लिये मायके में जाती हैं उनके स्वागत हेतु प्रत्येक घर-घर में उत्सव आयोजित किया जाता है। पीहर में आने वाली लड़की जो ससुराल से आती है—नैहर में उसका आदर सत्कार आत्मीयता भरा वातावरण छा जाता है। इसका तात्पर्य माहौल खुशी का हो जाता है। इसका तात्पर्य शायद प्रयोजन अन्तस की भावना यही है कि गौरी का स्वागत भी उसी प्रकार से हो।

गौरी पूजन महिलाएँ मानने से पूर्व तैयारी करती हैं—वे सज-धज कर श्रृंगार करके, जल से भरे कलशों को लेकर अपने-अपने घरों से निकलती हैं और इकट्ठा होकर, गीतों का गान करते हुए किसी सरोवर या नदी के किनारे पहुँचती हैं। वहाँ गौरी को आमंत्रण देती हैं। क्योंकि गौरी उनकी सुहाग की अधिष्ठाता देवी है। वे कलशों में, पाँच कंकड़ डालकर फूलों से उसकी पूजा करती हैं। गौरी को मायके बुलाने के लिए वे प्रलोभन देती हैं—तरह-तरह की मिन्नतें-अनुरोध करती हैं।

अंगणीं तापत दूध, दूधा पिवळी साई,
येग गवरी वाई, एवढं जेऊनी जाई॥

अर्थात्—घर में दूध तप रहा है, उस पर पड़ो मलाई है। गौरीबाई आओ और दूध मलाई खाकर जाओ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गौरी माता तो कुलवधू हैं। शंकरजी से पूछे बगैर वह मायके कैसे आ सकती है। वह कहती है—

आता काय करूं बाई माता ग,
दारी शंकर उभा ग।

माँ के पास आने की उसकी इच्छा तीव्र है, परन्तु रास्ते शंकरजी खड़े हैं। अब क्या करूँ।

शंकर साला भोला राजा, नगरीं सोडून जाय ग,
नगराला लागलं निशाण ग कापूराचो वात ग।
दिवा जळ्ठी दिवाची कापूर जळ्ठी आरती,
गवराय सारकी पावणी, खेळूं सा-या राती॥

शंकर तो भोला राजा हैं। नगर छोड़कर चला जाएगा। तेरे लिए गाँव की सीमा पर निशान लगाया है। कपूर बत्ती जलायी है। गौरी उस प्रकार में मायके आती है। सारी रात खेल खेलती है।

दूसरे गीत में गौरी शंकर से मायके जाने का अनुरोध करतीं है। भगवान शिव प्रश्न करते हैं—

माहेरी जाऊ न काय ग खाशील?

मायके जाकर क्या खाओगी? और पार्वतीजी उत्तर देती हैं—

तूप-शेवाया, दूध-शेवाया खाईन, दीड दिवस राहीन अन् मग येईन।

घी-सीवई खाऊँगी, दूध-सीवई खाऊँगी, डेढ़ दिन रहकर वापस आऊँगी।

मायके जाने की बात शंकरजी को भला क्यों रुचेगी? यह कहते हैं—

न्हई सोडीत पदर काय ग म्हणशील

पल्ला नहीं छोड़ा तो क्या करोगी?

पार्वती—वैताग घेऊन जाई जी होईन,
जाई होईन मी मळ्याला जाईन,
मी मग माळ्ठी होऊन येईन,
शंकर—पाणी घालून मग तुजला भेटीन,
झाड होऊन कळ्या मी आणीन,
फूल भी तोडुन हार गुंफोन,
देवाला घालून मी मन तुला न भेटीन।

प्रति उत्तर में पार्वतीजी कहती हैं—मैं दुःखो, कष्टी होकर विरक्त हो जाऊंगी। किसी उद्यान में चमेली का वृक्ष बन जाऊँगी।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हँसते हुए शंकरजी कहतै हैं—वाह फिर मैं माली बनकर पानी सीचूँगा और तुम्हें मिलूँगा। वृक्ष में कलियाँ खिलेंगी उन्हें तोड़कर हार बनाऊँगा। उसे देवता को चढ़ाकर फिर मैं तुझसे मिलूँगा।

इतनो मनुहार, उहा-पोह के उपरान्त उन्हें नैहर जाने की अनुमति मिल गयी। जैसे-तैसे पार्वतीजी पहुँची तो विलम्ब का कारण सखियाँ पूछने लगीं। प्रश्न-उत्तर इस प्रकार है—

पार्वती—आली-आली गवराय येतच हुती,
आंब्याच्या वनीं गुंतली होती,
आव्याचें आँब तोडीत होती,
सईच्या वटचा लावत होती,
आंव्याच्या वनीं वरुटा पाटा।
सहेली—आली-आली गवराय हळ्दद-कुंकूलावा

गौरी आ रही थी। मार्ग में सिल-बट्टेवाला कुआँ था। वहाँ एक आम्रवृक्ष था जिसकी छाया में कई ललनाएँ खड़ी थीं। गौरी रुकी। उसने आम तोड़े और सब ललनाओं को बाँटें, इसलिए उसे देरी हो गयी। अब तो गौरी आ गयी है, उसे हलदी कुंकुम लगाओ।

इसीलिए तभी से यह प्रथा आज तक प्रचलित है कि जब कोई सुहागन स्त्री किसी के घर जाती है उसके माथे पर दूसरी स्त्री कुंकुम का टीका लगाती है। प्रसन्नता अनुभव करती है।

इसके अलावा, पार्वतीजी के विलम्ब से पीहर आने का एक और कारण भी था। जिसे इस प्रकार बताया गया है—

साती शंकर वनामंदी, एकला गणु वनामदी,
गणूच्या आईला सांगत, गणूनं तोडं गमविलं,
गमविलं तर गमवूद्या, गणूला घराला धेऊन या

सात जंगल पार करके शंकरजी चले गये और गणेशजी पीछे एक जंगल में रह गये वहाँ उनके पैर का तोड़ा खो गया। पार्वती को खबर मिली तो दौड़ती हुई गणैश के पास गयी। तोड़ा खो गया खाने दो, कहती हुई उसे घर ले आयी। और फिर मायके आयी।

गौरी मायके आती है। वधुएँ उसे लिवा लाती हैं। घर में उसकी स्थापना करती हैं। कपड़े की या काष्ठ पुतलिकाओं को गौरी के रूप में सजाकर उस पर मिट्टी की या पीतल की प्रतिमा बनाकर रखी जाती है। इसे सोने चाँदी के आभूषण पहनाएँ जाते हैं तथा लुंगड़ा-चोली

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पहनायी जाती है। काँच की हरी चूड़ियाँ, मोती भरी माँग, महावर, कुंकुम तथा मंगलसूत्र आदि सौभाग्य अलंकार से उसे विभूषित किया जाता है। उज्ज्वल वर्ण के चावल, गेंहूँ, हरे वर्ण के मूंग, पान, सुपारी, हलदी की गाँठ; खोपरा इत्यादि पदार्थों से उसकी गोद भरी जाती है। गौरी का साज—श्रृंगार करती हुई सुहागनें गाती है—

रानामागली तुव्ठस, पानफुलांनी सजली,
पैंजणाच्या भारुभार गवर कशी ग लवली।

कितनी मार्मिकता है। तुलसी का बिरवा हरी पत्तियों और मंजिरों से भरकर झुक गया वैसे ही पायल के भार से गौरी झुक झुक कर चलती है।

गवर आली गजवारानं पाय भरलं पेंजनानं,
तुज्य, गुलालाचा भार माजं पैंजन झालं लाल,
गवर आली व गजवारानं पाय भरलं जोडव्यानं,

गाजे-बाजे सहित गौरी आती है। उनके पैर पायल और बिछुओं से भारी हो गये हैं। अबीर उड़ रहा है। सब औरतों के गहने लाल हो गये हैं। खुशी का मदमाता वातावरण है। गौरी को पहले दिन ज्वार बाजरे की रोटी और सब्जी खिलायी जाती है। माँ के हाथ की वह रूखी सूखी रोटी भी उसे मीठी लगती है। दूसरे दिन अष्टमी को उसके लिए पुरण-पोली बनती है। लड्डू, चावल, चटनी आदि खाद्य पदार्थों से भोजन कराया जाता है। साथ में ब्राह्मण, सुहागन भी भोजन करते हैं। उसके पश्चात् कत्था, सुपारी, इलायची से युक्त ताम्बूल समर्पित किया जाता है। भोजनोपरान्त विश्राम की भी सम्यक् व्यवस्था की जाती है। हीगलू पलंग तैयार है और कक्ष में दीपक जल रहा है।

रात के समय घर बाहर की समस्त छोटी वयस्क बड़ी महिलाएँ एकत्रित होती हैं। एक औरत परात उल्टी रखकर उस पर राख फैलाती है और बेलन या चम्मच उस पर फेरती है जिस कारण खर्र-खर्र ध्वनि गूँजती है। इसी स्वर और लय में ताल देती हुई सब ललनाएँ खेल खेलती हैं और नृत्य गीत प्रस्तुत करती हैं। गौरी शंकरजी से बिनती करती हैं—

आपने मुझे वरा है। माँ-बाप ने पाला-पोसा हैं और प्यार दिया है। आप नैहर जाने दें, भिजवा दें।

शंकर-गौरी की बात सुनकर उसको मायके भेजना चाहते हैं। किन्तु

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपनी स्नेहिल सहयोगिनी, संगति के अभाव की कल्पना से विरह से व्याकुल हो जाते हैं। भला वह अकेले कैसे रह सकते हैं। तभी पार्वतीजी उन्हें सान्त्वना देती हैं। वह उन्हें गणेश सहित भेज देते हैं।

अन्त में एक लोकगीत प्रस्तुत है जिसमें पार्वतीजी का शंकर के प्रति अटूट स्नेह, समर्पण त्याग और नारी हठ का वर्णन है।

शंकर अकेले न कोई नाता, रिश्ता, भाई-बहन। ऐसे को गिरिजा कैसे ब्याह दूँ। गिरिजा कहती है यह मेरे भाग्य की रेखा है, जिसे कोई नहीं मिटा सकता है। मैंने उन्हें चाहा है। दोनों प्रथम सूत्र में बन्ध जाते पार्वतीजी की विजयी होती।

इस प्रकार महाराष्ट्र की कोटि-कोटि रमणियाँ इस 'गौरीपूजन' के लोकगीतों के माध्यम से अपनी मार्मिक अनुभूति, नारी हृदय की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्त करती हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सन्त रामकृष्ण परमहंस और योगेश्वरी भैरवी ब्राह्मणी

— श्री बल्लभदास बिन्नानी 'व्रजेश'—

महान् पुरुषों का जीवन हजारों लाखों मनुष्यों के जीवन को अनुप्राणित करता है। जब ज्वार उठता हैं तब नदी, झरने, तालाब, नाले और गड्ढे सब जल से भर जाते हैं। जल उतना ही भर पाता हैं, जितनी जगह होती है। इसी प्रकार स्त्री-पुरुष जो भी महान् पुरुषों के सम्पर्क में आते हैं वे उनसे अत्यधिक बल पाते हैं। उसमें से जो उनके पद चिह्नों पर अपनी सम्पूर्ण भक्तिभावना और श्रद्धा के साथ चलते हैं, वे सन्त हो जाते हैं।

स्वाभाविक है कि श्री रामकृष्ण के महान् व्यक्तित्व से न केवल पुरुषों को ही प्रेरणा मिली, जिनमें से कुछ तो साधु हो गये और कुछ गृहस्थ, बल्कि अनेक स्त्रियों को भी इन्होंने प्रेरणा दी है। उनमें से कई ने योगियों का जीवन बिताया और शेष ने निष्ठावान् गृहस्थिनों का।

उनसे मिलने वाली महिलाओं में से एक तो उससे आयु में बड़ी थीं और जो उनके गुरुओं में से थीं। दूसरी एक ऐसी आध्यात्मिक महिला थी जिन्हें बाल-गोपाल के दर्शनों के अद्‌भुत अनुभव थे। उनकी भतीजी उनकी शिष्या बन गयी। उनकी अन्य शिष्याओं में बहुत गृहस्थ स्त्रियाँ अथवा पुजारिनें थीं, जिन्होंने पवित्र माँ शारदा देवी के सिद्धान्तों को अपनाया था।

योगेश्वरी भैरवी ब्राह्मणी

श्री रामकृष्ण की महिला गुरु, योगेश्वरी भैरवी ब्राह्मणी के नाम से विख्यात थीं। वे योग के साथ ही वैष्णव तथा तान्त्रिक कियाएँ भी करती थीं। उनका जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के लगभग हुआ था, क्योंकि सन् १८६१ में रामकृष्ण से भेंट होने के समय उनकी अवस्था प्राय: पैंतालिस साल की थी रामकृष्ण उस समय करीब पच्चीस वर्ष के थे, जो जैसोर (बंगलादेश) के रहने वाले थे। ये जीवन पर्यन्त कुंवारीं रहीं और उन्होंने योग की अपार शक्ति के द्वारा अद्‌भुत रहस्यपूर्ण शक्ति प्राप्त की थी।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१८६१ में घूमते-घूमते भैरवी ब्राह्मणी दक्षिणेश्वर आयीं। जब उनकी भेंट रामकृष्ण से हुई तो उनकी आँखों से आनन्दाश्रु छलक आये और उन्होंने अत्यन्त स्नेह-पूर्वक कहा 'मेरे बच्चे, तुम मुझे मिल गये। मुझे पता था कि तुम कहीं गंगा के किनारे मिलोगे, इसीसे मैं तुम्हें खोजती फिरती थी और अब मैंने तुम्हें ढूँढ़ लिया न।'

रामकृष्ण उनसे कुछ ऐसे प्रभावित हुए जैसे एक बालक अपनी माँ ओर खिंचता है। उन्होंने पूछा—'तुम्हें मेरे बारे में कैसे पता लगा माँ।'

'सर्वशान्तिमयी माँ की कृपा से ही मुझे यह आभास मिला था कि मैं तुम तीनों के मिलूंगी। दो से तो मैं मिल चुकी हूँ—वे हैं चन्द्र और गिरिजा, जो पूर्व बंगाल में है और तुम यहाँ हो!'

उन दिनों रामकृष्ण कठिन तपस्या कर रहे थे और उन्हें भाँति-भाँति के अनुभव प्राप्त हो रहे थे। वे बालक की भाँति भैरवी ब्राह्मणी के समीप बैठकर उन्हें अपने पारलौकिक अनुभवों की कहानी सुनाया करते। उन्होंने समाधि स्थिति में अपनी बाह्य चेतना के लुप्त हो जाने का और अपने समस्त शरीर की जलन, तथा निद्रा आदि के बारे में बताया। उन्होंने भैरवी से बार-बार पूछा—'क्या आप बता सकती हैं कि यह क्या है और क्यों है? लोग कहते हैं कि मैं पागल हूँ, क्या आप भी यही सोचती हैं कि मैं पागल हो गया हूँ?'

रामकृष्ण के ये अनुभव सुनकर भैरवी आनन्दातिरेक से भर उठीं, क्योंकि ऐसे पारलौकिक अनुभव भाग्य से ही होते हैं। उन्होंने कहा—'कौन तुम्हें पागल कहता है मेरे बेटे! यह पागलपन नहीं है। तुम्हें एक विलक्षण और अलौकिक अवस्था प्राप्त हुई है, जिसे महाभाव कहते हैं जिसके उन्नीस बाह्य रूप हैं—जैसे अश्रु, शरीर-कम्पन, रोमांच तथा पसीने से लथपथ हो जाना। जिसने ऐसा अनुभव न किया हो वह इसे समझ ही नहीं सकता और इसीसे संसारी लोग तुम्हें पागल कहते हैं।'

उन्होंने यह बताया कि राधा और श्री गौरांग ने भी इसी दशा का अनुभव किया था।

यह सब सुनकर श्री रामकृष्ण को अत्यन्त सन्तोष हुआ।

सन्ध्या-समय भोजन बनाकर, ब्राह्मणी ने सबसे पहिले अपने आराध्य रघुबीर को भोग लगाया, जिनकी प्रतिमा सदा उनके गले में झूलती रहती थी। ध्यान के समय उन्हें दिव्य दृश्य दीखे कि रामकृष्ण की पंचवटी आने की उत्कट इच्छा हुई थी, जहाँ पवित्र पंच वृक्ष थे और वे वहाँ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चले गये। विक्षिप्त मनुष्य के समान रामकृष्ण पाषाण-प्रतिमा के समक्ष रखे भोज्य पदार्थ खाने लगे। जब ब्राह्मणी की आँखें खुलीं तो वह रामकृष्ण को भोग-सामग्री खाते देखकर आह्लादित हो गयीं, क्योंकि उन्होंने ध्यानावस्था में भी ऐसा ही दृश्य देखा था। रामकृष्ण अपने आपे में न थे और 'पता नहीं, 'मैं कैसे यह सब कर गया ? लगता है कि जैसे मैं अर्द्ध-विक्षिप्त हो गया हूं।

ब्राह्मणी ने कहा—तुमने बहुत ही अच्छा किया पुत्र ! यह तुमने नहीं किया है बल्कि उसने किया है जो तुम्हारें अन्दर है। मुझे ध्यान करते समय ही पता लग गया था, कि किसने ऐसा किया है और क्यों किया है। अब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि मुझे किसी भी साधना की आवश्यकता नहीं है। मेरी साधना का फल मुझे मिल गया है। ऐसा कहकर उन्होंने बचा हुआ प्रसाद खा लिया और रघुबीर की प्रतिमा जिसकी उन्होंने वर्षों पूजा की थी, गंगा में विसर्जित कर दी, क्योंकि उन्हें विश्वास हो गया था कि रघुबीर रामकृष्ण की देह में प्रत्यक्ष हो गये थे।

ब्राह्मणी को अब पूर्ण विश्वास हो गया था कि श्री रामकृष्ण ने अपने अपार प्रेम प्रभुभक्ति और कठोर आध्यात्मिक नियमों के सफल अभ्यासों द्वारा पारलौकिक अनुभव प्राप्त कर लिया है। प्रायः उनके अनुभव चैतन्य महाप्रभु के अनुभवों के सदृश हैं।

एक बड़ी अद्‌भुत घटना घटी। श्री रामकृष्ण सिहोर की ओर जा रहे थे। उन्हें ऐसी अनुभूति हुई कि दो तेजस्वी बालकों का उनके शरीर से प्रादुर्भाव हुआ है, जिनको ब्राह्मणो ने चैतन्य और उनके साथी नित्यानन्द के रूप में पहचाना। तीव्र जलन को रामकृष्ण अपने शरीर पर अनुभव कर व्यथित रहते थे, इस पवित्र महिला ने बड़ी सरल विधि स उनका उपचार कर दिया।

एक बार श्री रामकृष्ण ऐसी अपरितोषणीय क्षुधा से व्याकुल थे कि चाहे जितना भोजन दिया जाय, उनको क्षुधा शान्त नहीं हो रही थी।

ब्राह्मणी जानती थी कि जो महान् आत्मायें उच्च आध्यात्मिक स्तर पर पहुँच जाती हैं, उन्हें कभी-कभी ऐसी अनहोनी स्थितियों से भी गुजरना पड़ता है। उन्होंने श्री रामकृष्ण को एक ऐसा उपचार बताया जिससे वह तीन दिन की अवधि में स्वस्थ हो गये।

ब्राह्मणी ने श्री रामकृष्ण को ६४ प्रमुख तन्त्रों के विभिन्न नियम

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपनियमों का प्रशिक्षण दिया। उन्होंने बाद में बताया पवित्र माना की असीम अनुकम्पा ने अनेक विपत्तियों और अग्नि-परीक्षाओं के समय मेरी रक्षा की। कुछ परिस्थितियाँ तो इतनी भयंकर थीं कि कोई भी जिज्ञासु पथ भ्रष्ट हो सकता था।

इस सन्त महिला ने प्रथम बार श्री रामकृष्ण में अवतार होने के लक्षणों को विवेचना की और अपने इस विश्वास को निर्भीकता से व्यक्त किया। दक्षिणेश्वर मन्दिर की स्वामिनी के दामाद मथुरानाथ विश्वास ने समकालीन कुछ ऐसे व्यक्तियों को निमन्त्रित किया, जो अपनी विद्वत्ता और आध्यात्मिकता के लिए प्रसिद्ध थे। इनमें से वैष्णवचरण, पण्डित गौरीकांत नर्कालंकार उल्लेखनीय हैं। इस गोष्ठी का उद्देश्य या ब्राह्मणी के विवेचन पर वाद-विवाद करना। उस समय पण्डित गौरीकान्त ने सुस्पष्टतः घोषित किया कि हे रामकृष्ण ! मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम उस अनन्त पारलौकिक शक्ति के भण्डार हो जिसका आंशिक प्रादुर्भाव इस नश्वर संसार में समय-समय पर अवतार रूप में होता रहता है। मेरा हृदय ऐसा अनुभव करता है और धर्मग्रंथ तथा शास्त्र मेरे साथी हैं। इनके आधार पर मैं अपनी इसी धारणा को संसार की किसी भी व्यक्ति के सम्मुख सिद्ध करने को प्रस्तुत हूँ।

भैरवी ब्राह्मणी ने अपने अन्तिम दिन भक्ति एवं अन्य आध्यात्मिक अनुशासनों में व्यतीत किये। जब श्री रामकृष्ण तीर्थ-यात्रा पर बनारस गये हुए थे, तब वहाँ उनकी भेंट उससे हुई और उन्होंने उसे वृन्दाबन में अपना शेष जीवन बिताने की मंत्रणा दी। तदनुसार उस तीर्थ स्थान के लिए उसने उनके साथ प्रस्थान किया जहाँ कुछ समय पश्चात् वह परलोक सिधार गयीं।

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Revised Price-List of various Publications and Articles available with

SHREE SHREE ANANDAMAYEE CHARITABLE SOCIETY

PUBLICATIONS DIVISION

EZRA MANSIONS. 10, GOVT. PLACE EAST. CALCUTTA 700 069

Phone : 23-1211

A. *BOOKS* :

ENGLISH

1. Mother as Revealed to me —"*Bhaiji*" Rs. 10/- or $ 2 or Sh. 18
2. Mother as seen by Her Devotees Rs. 10/- or $ 2 or Sh. 18
3. Sad Vani Rs. 3/- or $ 1 or Sh. 6
4. Matri Vani (Sayings) Vol. I Rs. 3.50 or $ 1 or Sh. 6
5. —Do— Vol. II Rs. 5.50 or $ 1½ or Sh. 10
6. Words of Sree Anandamayee MA Rs. 10/- or $ 3 or £ 1 Sh. 10
7. MA Anandamayee Lila —*Sri Hari Ram Joshi* Rs. 20/- or $ 3.00 or £ 1 Sh. 6
8. A Mystic Sage—MA Anandamayee—*Shyamananda Banerjee* Rs. 20/- or $ 3 or £ 1 Sh. 6
9. Anandamayee MA —*N. Chowdhury* Rs. 8/- or $ 1½ or Sh. 12
10. From the life of Anandamayee MA—*Bithika Mukerji* Rs. 20/- or $ 3 or £ 1 Sh. 6
11. Anandamayee MA's Inscrutable Kheyal—*Anil Ganguly* Rs. 5/- or $ 1½ or Sh. 12
12. Life and Teachings of Sri Anandamayi Ma—*Dr. Alexander Lipski*
    Cloth bound Rs. 30/- or $ 5 or £ 2 Sh. 5
    -Do- Paper back Rs. 16/- or $ 3 or £ 1 Sh. 6
13. Our Mother—Shree Shree Anandamayi Rs. 10/- or $ 2 or Sh. 18

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

HINDI

1. Matri Darshan—"*Bhaiji*" ... ... Rs. 5.00
2. Sad Vani ... ... Rs. 2.00
3. MA Anandamayee – *Dr. Pannalal* ... Rs. 5.00
4. Akhanda Mahayajna—*Gurupriya Devi* ... Rs. 2.50
5. Kirtan-Rasa-Swarupa ... ... Rs. 10.00
6. Stava-Sankirtan-Arati ... ... Rs. 2.00
7. Amar Vani—compiled by *Br. Virjananda* . Rs. 10.00
8. Matri Vani ... ... Rs. 2.50
9. Sri Sri MA Anandamayee—*Gurupriya Devi*
   Vols. 1, 2 and 4 to 20 each Vol. Rs. 8.00
   Vol. 3 (New edition) each Rs. 10.00
   N B. Those purchasing 10 Vols. or more at a time of this particular book will be entitled to a special rebate of 10% in price.
10. Suno MA Ka Kahani—*Sailesh Brahmachari* Rs. 7.00

GUJRATI

1. MA Anandamayee-Ke-Sannidhyame
   —*Swami Bhagavatananda* Vol. I Rs. 8.00
   Vol. II (out of stock)
   Vol. III Rs. 10.00

BENGALI

1. Matri Darshan—"*Bhaiji*" (New edition) ... Rs. 7.50
2. Sad Vani ... ... Rs. 2.00
3. Matri Vani ... ... Rs. 3.00
4. Akhanda Mahayajna—*Gurupriya Devi* .. Rs. 2.50
5. Kirtan-Rasa-Swarupa ... ... Rs. 10.00
6. Stava-Sankirtan-Arati ... ... Re. 1.00
7. Namawali—*Ganga Samiran* ... ... Re. 1.00
8. Shree Shree Ram Gita
   —*Swami Narayanananda Tirtha* ... Rs. 2.50
9. Dikshiter Krishnapuja —Do— ... Rs. 1.50
10. Vivek Churamani —Do— ... Rs. 3.50

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

11. Ajnata Bana Kusum (Life history of 9 Saints)
—Swami Narayanananda Tirtha ... Rs. 3.00
12. Brahmanu Chintanam—Translated from the original book by Adi Sankaracharya —Do— ... Rs. 3.00
13. Santan Batsala Sri Sri MA Anandamayee —Do— ... Rs. 18.00
14. —Do— Vol. II —Do— ... Rs. 12.00
15. Mahamahopadhya Doctor Gopinath Kabiraj Mahashayer Punya Jibaner Sankhipta Anudhyan —Do— . Rs. 2.00
16. Sono Bali Mayer Katha—*Sailesh Brahmachari* Rs. 5.00
17. Swakriya Smarasamrita—*Brahmacharini Chandan Puranacharya* Part—I .. Rs. 10.00
18. —Do— Part—II ... Rs. 10.00
19. Bhaijir Dwadash Vani (New edition) ... Re. 1.00
20. Mayer Lila Katha—*N. Chowdhury* . Rs. 5.00
21. Sri Sri Muktananda Giri Maharaj
—Sri Anil Chandra Gangopadhyaya .. Rs 1.50
22. Amar Vani—compiled by *Br. Virjananda*
(New edition) ... Rs. 20.00
23. Sri Sri MA Anandamayee—*Gurupriya Devi*
Vols. 1, 2, 3 and 7 to 17 each Vol. ... Rs. 8.00
Vols. 1, 4, 5 and 6 (New Ed.) each Vol. .. Rs. 12.00
N.B. Those purchasing 10 Vols. or more of this particular book, at a time will be entitled to a Special rebate of 10% in price.
24. Shree Shree Anandamayee Lila Prasanga
Amulya Dutta Gupta (New edition) Part—I Rs. 10.00
Part – II Rs. 10.00

QUARTERLY JOURNALS

ANANDA VARTA —Published simultaneously in three languages—English, Bengali & Hindi (January, April, July & October).

Single copy—Rs. 4/- each

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Rate of annual subscription including postage :

In India—One language Rs. 12/-

Foreign (including Europe & America)

By Sea Mail ... $ 4.00 or £ 2.00 or Rs. 32/-

By Air Mail ... $ 8.00 or £ 3.50 or Rs. 64/-

The payment should be made in the name of "SHREE SHREE ANANDAMAYEE CHARITABLE SOCIETY" (A/C. PUBLICATIONS DIVISION) by M.O. or Bank Draft only on any Calcutta Bank and not by cheque to avoid Bank-Charges and unnecessary delay in encashment.

B. *PHOTOS & LOCKETS* :

1. PHOTOS, according to sizes and quality ranging from Re. 1.00 to Rs 50.00 each.
2. LOCKETS, according to sizes and quality ranging from Re. 1.00 to Rs. 12.00 each.
3. Steel chains for the Lockets—Rs. 0.75 each.

N.B. The revised prices as above will be effective from 1.2.1981

The above books & materials can be had of :

1. PUBLICATIONS DIVISION,
   Shree Shree Anandamayee Charitable Society,
   31, Ezra Mansions, 10, Govt. Place East,
   Calcutta-700 069. Phone : 23-1211
2. ALL BRANCH CENTRES / ASHRAMS OF SHREE SHREE ANANDAMAYEE SANGHA.
3. M/S. GLOBE LIBRARY (P) LTD.,
   Book Sellers & Publishers,
   2, Shyama Charan Dey Street, Calcutta-700 073.
   Phone : 34-3660

G. N. ROY
On behalf of
Publications Division

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

BRANCH-CENTRES

1. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Bhadaini, Varanasi, U. P. (Phone : 62791), Tele : "Mataji"
2. Shree Shree Ma Anandamayee Kanyapeeth, Bhadaini, Varanasi, U.P.
3. Mata Anandamayee Hospital, Shivala, Varanasi, U.P. (Phone : 52591 & 52491)
4. Anandamayee Karuna, Bhadaini, Varanasi, U. P.
5. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Dist. Mathura, Vrindaban, U. P. (Phone : 94)
6. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Ashtabhuja Hill, Vindhyachal, U. P.
7. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram. Kishenpur, P.O. Rajpur, Dehradun, U. P. (Phone : Rajpur 271)
8. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Kalyanvan, 176, Rajpur Road, P.O. Rajpur, Dehradun, U. P.
9. Shree Shree Ma Anandamayee Sadhan Ashram, 47/A, Jakhan, Dehradun, U. P. (Phone : 4038)
10. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Rajpur Ordnance Factory, Dehradun, U. P.
11. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Kankhal (Hardwar), Dist. Saharanpur, U. P. (Phone : 575)
12. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Kali Mandir, P.O. Uttar Kashi, U. P.
13. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Patal Devi, Almora, U. P.
14. Shree Shree Ma Anandamayee Vidyapeeth, Patal Devi, Almora, U.P.
15. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Puran Mandir, P.O. Naimisharanya, Dist. Sitapur, U. P.
16. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Kalkaji, New Delhi-19 (Phone : 631378)
17. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Agarpara, P.O. Kamarhati, Calcutta-58 (Phone : 581208)
18. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Chandipur-Tarapeeth, Dist. Birbhum, West Bengal
19. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Rajgir, Nalanda, Bihar
20. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Main Road, Ranchi, Bihar
21. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Swargadwar, Puri, Orissa
22. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Bhimpura, P.O. Chandod, Baroda, Gujrat
23. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Ganesh Khind Road, Poona-7
24. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Dhaul-china, Almora, U. P.
25. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Siddheswari, P.O. Ramna, Dacca, Bangladesh
26. Anandamayee Karikari Vidya Niketan, P.O. & Vill. Kheora, Dist. Comilla, Bangladesh
27. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Agartala, West Tripura
28. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Bairagarh, Bhupal, Madhya Pradesh
29. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Kedarnath, Chamoli, Tehri-Garwal. Uttar Pradesh.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Postal Regd. No.
ĀNANDA VĀRTĀ April, 1981 W. B/CC/158

Registered with the Registrar of Newspaper under No. 4727/5

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi